एकता

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद

और

गृहस्थ-धर्म

यजुर्वेद

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

167968
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web: aarshsahitya.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद और गृहस्थ-धर्म

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद और गृहस्थ-धर्म

Central Library
167968
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

गुरुदत्त

आर्ष साहित्य
Complete Vedic Books Store
Yog, Vedic, Ayurvedic, Relegious
All Yog & Organic Products
(M) 9541317278, 8869821468
Web: aarshsahitya.com

081
167968

हिन्दी साहित्य सदन
नई दिल्ली-110 005

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

R
089.9143
GUR-Y

© हिन्दी साहित्य सदन

मूल्य : 70.00 रुपये

प्रकाशक : हिन्दी साहित्य सदन
2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 डी.बी. गुप्ता मार्ग
(समीप प्रह्लाद मार्केट) करोल बाग, नई दिल्ली-5
फोन : 23553624 ◆ फैक्स : 91-11-25412417
E-mail : indiabooks@rediffmail.com

संस्करण : 2003

मुद्रक : अजय प्रिंटर्स
दिल्ली-110032

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस सदी में महर्षि दयानन्द से प्रेरणा प्राप्त कर कई दिग्गज विद्वानों ने वेदान्वेषण को अपना जीवन समर्पित कर दिया था। पं. सातवलेकर, पं. विश्वबंधु के नाम सर्वोपरि हैं। परन्तु श्री गुरुदत्त जी की विशेषता है सरल भाषा में विवेचना।

श्री गुरुदत्त जी विज्ञान के विद्यार्थी होने से विश्लेषणात्मक बुद्धि रखते थे। इस पृष्ठ-भूमि पर उन्होंने वेदाध्ययन आरंभ किया तो पाया वेदों में सृष्टि-रचना का इतिहास है तथा साथ ही अध्यात्म एवं जीवन-यापन संबंधी ज्ञान भी भरा पड़ा है।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यंत सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्राक्कथन

:: 1 ::

यह भारतीय मान्यता है कि वेद ईश्वरीय ज्ञान है। अथर्ववेद में एक मन्त्र है—

यस्मादृचो अपातक्षन् यजुर्यस्मादपाकषन्।
सामानि यस्य लोमान्यथर्वाङ्गिरसो मुखं स्कम्भं तं ब्रूहि कतमः स्विदेव सः॥

—अथर्व॰ 10-7-20

अर्थ है—

जिससे ऋचः (ऋग्वेद, यजुर्वेद, सामवेद के मन्त्र और अथर्व के वाक्य) प्राप्त हुए और जिनको [ऋषियों ने] सूक्ष्म रूप में कहा, वे किसने धारण किये हुए थे और किसने उनको कहा था?

वेद तथा ऋषियों का कहना है कि इनको परमात्मा ने धारण किया हुआ था और ऋषियों ने लोक-कल्याण के लिए कहा।

यह वचन ऋग्वेद के इस मंत्र के सर्वथा अनुकूल है—

विश्वान् देवाञ्जगत्या विवेश तेन चाक्लृप्र ऋषयो मनुष्याः॥

—ऋ॰ 10-130-5

ऋग्वेद में, इससे पूर्व के मंत्रों में यह कहा है कि अग्नि, सविता, सोम, बृहस्पति, मित्र, वरुण, इन्द्र और समस्त देवता वेद छन्दों के प्रसारण में सहायक हुए थे। इस मंत्र में कहा है कि इन छंदों से पहले ऋषि ज्ञानवान् हुए और फिर उनसे अन्य मनुष्य लाभान्वित हुए।

छन्दों से अभिप्राय है—तेज की रश्मियों पर आरूढ़ तरंगें। जैसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रेडियो स्टेशन से प्रसारित वाणी, शक्ति की तरंगों पर सवार हो फैलती है, रेडियो सेट उनको ग्रहण कर मानवी भाषा में बोलते हैं और मनुष्य को लाभ प्राप्त होता है।

कुछ ऐसा ही ईश्वर की कृपा से हुआ और प्रारम्भिक ज्ञान ऋषियों के द्वारा मनुष्यों को मिला।

मनुष्य उत्पन्न होते हैं, वैसे ही जैसे पशु उत्पन्न होते हैं। यह देखा गया है कि उत्पन्न हुए बालक को यदि माता-पिता तथा समाज से पृथक् कर दिया जाए तो वह कुछ भी नहीं सीख सकता। यदि सृष्टि के आरम्भ में मनुष्य को यह ज्ञान न मिला होता तो समाज से पृथक् किये बालक की भाँति मनुष्य भी कुछ न सीख पाता।

अत: वेद का मत है कि आरम्भ में मनुष्य को प्रारम्भिक ज्ञान परमात्मा ने दिया और मनुष्य श्रेष्ठ मन तथा बुद्धि रखने के कारण उस प्राप्त ज्ञान से अपना कार्य चलाने लगा।

वह ज्ञान क्या था और आज कहाँ प्राप्त है? यह प्रश्न है। भारतीय परम्परा है कि वह ज्ञान वेदज्ञान था और वर्तमान ऋक्, यजु:, साम और अथर्व वेदों में उपलब्ध है।

इस ग्रन्थ में हम इन दोनों कथनों को, जैसा ऊपर के मन्त्रों में कहा है, स्वीकार कर वेद में कहे ज्ञान में से कुछ का यहाँ वर्णन करेंगे। 'वेद और वैदिक काल'[1] में इनका ईश्वरीय ज्ञान होना सिद्ध करने का यत्न किया है। यहाँ इस पुस्तक में चार वेदों में से एक यजुर्वेद के विषय पर कुछ प्रकाश डालने का यत्न करेंगे।

यह कहा जाता है कि भाषा के अतिरिक्त वेद में तीन विषय वर्णन किये गए हैं। वे तीन विषय हैं—1. कल्प, 2. शिक्षा तथा 3. ज्योतिष।

कल्प के विषय में विस्तार से ऋग्वेद में कहा है। कल्प का अर्थ है, जगत् की उत्पत्ति, पालन तथा इसका पुन: मूल तत्त्व में लीन होना। परन्तु यह विषय इस ग्रन्थ का नहीं है।

वेद का दूसरा विषय है—शिक्षा। शिक्षा से अभिप्राय है कि मनुष्य इस संसार में किस प्रकार जीवन चलाए। आज वर्तमान युग में शिक्षा के विषय

---

1. लेखक की अन्य रचना।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

में बहुत कुछ कहा जा रहा है। इस कारण यह भी जानने योग्य होगा कि आज से बहुत, बहुत पहले शिक्षा के विषय में क्या कहा गया था।

यह बात सर्वमान्य है कि वेद प्राचीनतम ग्रन्थ हैं। भारतीय परम्परा तो यह है कि मनुष्य के पृथिवी पर उत्पन्न होते ही ये ऋषियों द्वारा मनुष्य को दिये गये और लोगों ने वेद-शिक्षा से भरपूर लाभ उठाया।

परन्तु आजकल के कहे जाने वाले विद्वान् यह मानते हैं कि वेद पृथिवी पर चार हज़ार वर्ष से आठ-नौ हज़ार वर्ष पहले कहे गये थे। इस पर भी यह तो निर्विवाद है कि इतनी पुरानी कोई अन्य संहिता नहीं है। अत: यह मान भी लें तब भी विद्वानों के लिए यह जानना रुचिकर होगा कि उस प्राचीन काल में भारतीय विद्वान् किस प्रकार का जीवन व्यतीत करना ठीक समझते थे।

भारतीय परम्परा के अनुसार पृथिवी पर मानव सृष्टि हुई, वर्तमान चतुर्युगी के आरम्भ में और उसी समय वेद ऋषियों द्वारा मनुष्यों को मिले। मोटी गणना के अनुसार इसे 39,00,000 वर्ष व्यतीत हुए हैं।

एक प्रश्न यह उत्पन्न होता है कि मनुष्य के सृष्टि पर उत्पन्न होते ही मनुष्य को परमात्मा का ज्ञान प्राप्त हुआ अथवा कुछ काल उपरान्त।

वेद में यह प्रक्रिया बताई है कि पहले राष्ट्री भाषा का आविर्भाव हुआ। ऋषियों ने उस भाषा का अर्थ बताया। राष्ट्री भाषा से अभिप्राय लोकभाषा है। लोकभाषा में लोक-व्यवहार होने लगा था। जाओ, खाओ, पिओ, बैठो, भोजन, फल, दूध, जल, आसन इत्यादि क्रियाओं के नाम पहले रखे गये और पीछे उन क्रियाओं से वस्तुओं के नाम बने।

जब यह हो गया तब ऋषियों ने वेदज्ञान उसी लोकभाषा में जन-सामान्य को बताया। उस समय राष्ट्री भाषा ही वेद भाषा थी। दोनों में अन्तर नहीं था।

एक प्रश्न यह भी मन में उत्पन्न होता है कि वेदमन्त्र कैसे ऋषियों के मन में प्रस्फुटित हुए? कहा है कि पद-पद कर ये ऋषियों के मन में आये और उन्होंने वे पद जनता में कहे।

उदाहरण के रूप में एक पद इस प्रकार पहले सूझा—'अग्निमीळे'। जब इसका भाव हृदयंगम हो गया और ऋषि समझ गया कि अग्नि की स्तुति [गुण, कर्म, स्वभाव पर चिन्तन] करना है और वह किया गया तो दूसरा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पद उनके मन में प्रस्फुटित हुआ—'पुरोहित'। ऋषि को समझ आया कि यह अग्नि पूर्व काल में [सृष्टि-रचना से पहले] लोकहित का कार्य ही कर रही थी। तदनन्तर अगला पद आविर्भाव हुआ—'यज्ञस्य देवम् ऋत्विजम्'। उस यज्ञ को करनेवाला ऋत्विक् था। वह अग्नि है।

तब अन्त का पद मन में प्रस्फुटित हुआ—'होतारम् रत्नधातमम्'। उस अग्नि, होतारम् ने संसार को उपयोगी पदार्थ दिए।

लगभग इस प्रकार ऋषियों के मन में पद-पद कर वेद प्रस्फुटित हुए। जो बात ध्यान रखने योग्य है, वह यह है कि राष्ट्री [लोकभाषा] का आविर्भाव पहले हो चुका था। जब ऋषियों के मन में भाव उत्पन्न हुए तब उन्होंने उन भावों को लोकभाषा के शब्दों में सामान्य मनुष्यों को बताया।

कितना काल लगा होगा, जिसमें वेद के 20,307 मन्त्र कहे गये?

हमारा अनुमान है कि एक मनुष्य के जीवनकाल में यह सब कुछ हो गया होगा। मनुष्य जीवन उस समय कितना बड़ा था? इस विषय में यह अनुमान है कि आरम्भ काल में मनुष्य जीवन पाँच-छः सौ वर्ष का रहा होगा।

मनुष्य का सामान्य सक्रिय जीवन एक सौ वर्ष तक तो है ही। उसे विद्वान् लोग लम्बा कर सकते हैं। तब भी किया होगा और बाईबिल के अनुसार 'आदम' जिसे भारतीय परम्परा में 'ब्रह्मा' कहा जाता है, का जीवन सात सौ वर्ष माना जाता है। यहूदी परम्परा में उसे अब्राहम कहा है। वह भी दीर्घजीवी मनुष्य था।

उस समय कागज का आविष्कार तथा लिखने के साधन न होने से सब कुछ स्मरण ही रखा जाता था। तत्कालीन प्रतिभाशाली ऋषियों ने इक्कीस हज़ार मन्त्रों का संग्रह स्मरण रखा और उसकी परम्परा चलाई।

बस, इतने काल में ही वेद पूर्ण हो गये और इसके मन्त्रों द्वारा जन-जन का ज्ञानवर्द्धन होने लगा।

परन्तु वेदों का विभाग ऋक् यजुः, साम और अथर्व के रूप में पीछे हुआ। वेद मंत्रों को सूक्तों और अनुवाक् तथा अध्यायों इत्यादि में पीछे बाँटा गया। यह तो पता चलता है कि ऋक्, यजुः, साम और अथर्व नाम वेदमन्त्रों में हैं, परन्तु वहाँ वे ग्रन्थ-सूचक नहीं हैं, वरन् विषय सूचक हैं। ऋक् का अर्थ है—स्तुति। यजुः का अर्थ है—युक्त करना। अर्थात् किसी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कार्य को संगठित करना। अथर्व का अर्थ, अर्थ-सम्बन्धी है। अर्थात् जीवन का प्रयोजन और उस प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए साधन। साम का अर्थ है—शान्ति, सुख इत्यादि। वेद यह मानता है कि ये परमात्मा की संगत से प्राप्त होते हैं। इसलिए सामवेद में परमात्मा के गुण, कर्म, स्वभावों से जीवात्मा का संयोग किस प्रकार हो सकता है, यह बताया है।

ऐसा प्रतीत होता है कि वेद को ढंग से उपस्थित करने के प्रयास में कई ऋषियों का योगदान था। इन ऋषियों को व्यास की उपाधि से स्मरण किया गया है। कई व्यास हो चुके हैं और उन सब के प्रयास का फल ही है जो आज वेद मण्डलों, अध्यायों, अनुवाकों, सूक्तों इत्यादि में विभक्त हुए मिलते हैं।

इन्हीं लोगों ने वेदमन्त्रों के देवता निश्चय किए थे। देवता से अभिप्राय है मन्त्र का विषय। देवता का अर्थ दिव्य शक्तियाँ माना जाता है। उन दिव्य प्राकृतिक शक्तियों के प्रतीक देवता भिन्न हैं और मन्त्रों के देवता भिन्न हैं। मंत्रों के देवता से अभिप्राय मंत्र का विषय है।

:: 2 ::

शिक्षा यजुर्वेद का विषय है। यह हम बता चुके हैं कि मंत्रों का आविर्भाव पद-पद कर ही हुआ था और पदों से मंत्र बने। परन्तु इस विशाल मंत्र-संग्रह को विषयबद्ध पीछे ऋषियों ने किया। शिक्षा सम्बन्धी-मन्त्रों को यजुर्वेद में संग्रह करने वाले ऋषि का नाम वायु कहा है।

कुछ भी हो, यज् से युज् शब्द बना है। यज् धातु का अर्थ है—संयुक्त होना, पूजा करना। पूजा का अभिप्राय है—पदार्थों के गुणों को समझना और उनका प्रयोग करना।

सामान्य भाषा में कर्म से युक्त करने वाले विधि-विधान को यजुः कहते हैं।

जीवन में पदार्थों तथा परिस्थितियों से सम्पर्क में आने पर उनका पूजन करना अर्थात् उनके योग्य व्यवहार करना, उनका प्रयोग करना ही है।

पूजा का अर्थ यही है कि जो जैसा है, उसके साथ वैसा ही व्यवहार

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करे। यही उसकी पूजा है। साधु सज्जनों की भोजनादि से सेवा करनी उनकी पूजा होती है और दुष्ट को दण्ड देना, सन्मार्ग दिखाना भी उसकी पूजा ही कही जाती है।

अतः यजुर्वेद, इस संसार में रहते हुए प्राणी को किस-किस परिस्थिति में कैसा व्यवहार करना चाहिए, यह बताता है।

मनुष्यों का दूसरों से व्यवहार, उनके सद्‌गुणों अथवा दुर्गुणों के अनुरूप होता है। इसी प्रकार परिस्थितियों के अनुसार व्यवहार को भी पूजा ही कहेंगे। इन सब व्यवहारों का जहाँ बाहिरी पदार्थों और परिस्थितियों से सम्बन्ध होता है, उसी प्रकार मनुष्य का अपनी परिस्थितियों से भी सम्बन्ध है।

एक बालक का घर में कैसा व्यवहार हो? एक कुमार का अपने गुरुजनों अथवा पितरों से कैसा व्यवहार हो? एक युवा का व्यवहार इन सबसे भिन्न प्रकार का होगा। इसी प्रकार एक गृहस्थ का व्यवहार उसके विद्यार्थी काल के व्यवहार से भिन्न होगा।

इस पुस्तिका में यजुर्वेद में गृहस्थ जीवन के विषय में क्या कहा है, हम उसका वर्णन करना चाहते हैं।

गृहस्थ जीवन का आरम्भ होता है, जब बालक तथा बालिकाएँ अपनी शिक्षा समाप्त कर, विवाह कर संसार के कार्य चलाने लगते हैं। इस जीवन के विषय में मनुस्मृति में कहा है—

गुरुणाऽनुमतः स्नात्वा समावृत्तो यथाविधि।
उद्वहेत द्विजो भार्यां सवर्णां लक्षणान्विताम्॥

—मनु० 3-4

अभिप्राय है कि द्विज बालक अपनी शिक्षा समाप्त कर, विधि अनुसार (गुरुकुल से अवकाश प्राप्त कर) सवर्ण और अच्छे लक्षणों वाली लड़की से विवाह करे और गृहस्थ पालन करे।

विद्यालय में किस प्रकार की शिक्षा हो, इसका इस पुस्तक से संबंध नहीं है। वह एक पृथक् पुस्तक का विषय है। इस पुस्तक का विषय यह है कि गृहस्थाश्रम में मनुष्य कैसा जीवन चलाए और उस जीवन में यजुर्वेद क्या कहता है।

मनुस्मृति के उक्त श्लोक में तो केवल इतना ही कहा है कि शिक्षा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाप्त कर युवक किसी शुभ गुणयुक्त और अपने वर्ण वाली युवती से विवाह करे।

गुरुकुल से समापवर्तन संस्कार के उपरान्त अर्थात् गुरुकुल छोड़ने के विधि-विधान पूर्ण कर माता-पिता के पास आए और माता-पिता उसका आदर-सत्कार कर, उसके अनुकूल श्रेष्ठ गुण, कर्म वाली कन्या से उसका विवाह कर दें।

यहाँ 'सवर्णा' का अर्थ समझ लेना चाहिए। मानव समाज में, भारतीय शास्त्रानुसार, चार स्वभाव के लोग समझे जाते हैं। ब्राह्मण स्वभाव तथा कर्म वाले, क्षत्रिय स्वभाव तथा कर्म वाले, वैश्य स्वभाव तथा कर्म वाले और शूद्र स्वभाव तथा कर्म वाले।

जैसा स्वभाव तथा कर्म एक मनुष्य अपने जीवन में रखता है, वैसा ही उसका वर्ण समझना चाहिए।

कुछ लोग कहते हैं कि परिवार, माता-पिता और पूर्वजन्म के कर्मों का मनुष्य के स्वभाव, गुण तथा कर्म पर प्रभाव पड़ता है। पड़ता है तो पड़े। परन्तु मनुष्य का मूल्यांकन तो वर्तमान जीवन के स्वभाव, कर्म इत्यादि के अनुसार होगा और उसी के अनुसार उसका वर्ण होगा। गीता और मनुस्मृति में स्पष्ट रूप से ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के गुण, कर्म, स्वभाव का उल्लेख मिलता है। इस गुण, कर्म तथा स्वभाव के बनने में कुछ भी कारण रहा हो, पूर्वजन्म के कर्म रहे हों, माता-पिता के संस्कार रहे हों अथवा शिक्षा-दीक्षा का प्रभाव रहा हो, किसी भी प्रकार से बने हों, इस स्थान पर यह विवाद का विषय नहीं है। यह स्पष्ट है कि मनुष्य के जैसे गुण, कर्म और स्वभाव वर्तमान में होंगे, वैसा ही उसका वर्ण होगा। ऐसा विधान है।

क्षत्रिय अथवा वैश्य के घर में ब्राह्मण होने की सम्भावना को वर्जित नहीं किया जा सकता।

अतः जो कुछ वेद में गृहस्थाश्रम के विषय में कहा है, वह मुख्यतः कर्म से ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य के लिए ही कहा है।

शूद्र के लिए क्यों नहीं कहा? इस पर हमारा मत है कि जब वर्ण गुण, कर्म तथा स्वभाव से ग्रहण किए ज़ाएँगे तो फिर कोई पढ़ा-लिखा व्यक्ति शूद्र होगा ही नहीं और यहाँ जो व्यवहार हम वर्णन करने जा रहे हैं, वे पढ़े-लिखों के लिए ही हैं। अनपढ़, उजड्ड, मूर्ख, निरक्षर 'भट्टाचार्यों' के लिए नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यही कारण है कि मनुस्मृति में स्पष्ट शब्दों में द्विज के विषय में कहा है।

शूद्र क्या करें, उसके विषय में भी मनुस्मृति में कहा है। परन्तु वह हमारी इस पुस्तक का विषय नहीं है।

यहीं यह समझ लेना चाहिए कि हम वेद पढ़ने और उसमें कहे अनुसार आचरण करने से किसी को मना नहीं कर रहे। हमारा केवल मात्र इतना बताने से ही प्रयोजन है कि द्विज गुण, कर्म, स्वभाव वाले व्यक्ति के लिए यजुर्वेद में क्या करने को कहा है।

कोई भी शूद्र अर्थात् जो व्यक्ति अनपढ़ तथा विद्या ग्रहण करने में अयोग्य है, वह उस कर्म के, जिसका वर्णन हम इस ग्रन्थ में कर रहे हैं, योग्य हो सकता ही नहीं। वह सुने, पढ़े और आत्मोन्नति का यत्न करे, इसकी मनाही नहीं है। जब वह समाज और समाज बनाने के उद्देश्य को समझने लगे, तब वह शूद्र रहेगा ही नहीं और उसके अधिकार किसी भी द्विज के समान हो जाएँगे। वैसे शूद्र के लिए उन्नति का मार्ग अवरुद्ध नहीं है। वेद भी उसके लिए मार्ग प्रशस्त किए हुए हैं। वेद में मंत्र है—

यथेमां वाचं कल्याणीमावदानि जनेभ्यः। ब्रह्मराजन्याभ्यां शूद्राय चार्य्याय च स्वाय चारणाय। प्रियो देवानां दक्षिणायै दातुरिह भूयासमयं मे कामः समृध्यतामुप मादो नमतु॥

यजु:० 26-2

इस मंत्र का अर्थ है—जो यह मेरी कल्याणमयी वाणी है, यह ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र के लिए तथा उनके अतिरिक्त भी जो मनुष्य हैं, सबके लिए हैं।

इस वाणी को सुनकर मेरी श्रद्धा विद्वानों में बढ़े और मैं दानादि से उनकी सेवा और पालन में समर्थ हो सकूँ।

इस प्रकार यदि शूद्र वेद का उपदेश सुनकर सामर्थ्यवान् होता है तो उसे कोई रोक नहीं सकता।

यह हमारा मत है कि जब एक शूद्र, वेदादि शास्त्र को सुनकर श्रेष्ठ स्वभाव तथा कर्म वाला हो जाएगा तब वह शूद्रों की गणना में नहीं रहेगा।

अतः जो शिक्षा हम इस ग्रन्थ में कहने वाले हैं, वह द्विजों के लिए है। अर्थात् ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्यों के लिए है—जो इन वर्णों में अपने गुण, कर्म, स्वभाव से हों।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

:: 3 ::

ब्राह्मण, क्षत्रिय और वैश्य होने का निश्चय किस प्रकार किया जाए? यह एक प्रश्न है।

जब यह स्पष्ट हो गया कि व्यक्ति का वर्ण अर्थात् उसका जीवन-कार्य उसके गुर्ण, कर्म तथा स्वभाव से निश्चय होगा, तब वह किसका पुत्र है अथवा किस परिवार में उत्पन्न हुआ है, यह जानने की आवश्यकता नहीं होगी। इसका निश्चय करने के लिए मनुस्मृति में स्पष्ट संकेत है—

निषेकादिष्मशानान्तो मन्त्रैर्यस्योदितो विधिः।
तस्य शास्त्रेऽधिकारोऽस्मिञ्ज्ञेयो नान्यस्य कस्यचित्॥

—मनु० 2-16

अर्थ है—जिस मनुष्य के जन्म से लेकर संस्कार शास्त्र विधि अनुसार हो रहे हों, उसको शास्त्र पढ़ने का अधिकार है।

यहाँ यह नहीं कहा कि जो रविशंकर शर्मा अथवा किसी ब्राह्मण के वीर्य से उत्पन्न हो। यहाँ कहा है कि शास्त्रानुसार जिसके संस्कार हुए हैं और हो रहे हैं उसको शास्त्र पढ़ने का अधिकार है।

परन्तु केवल यही शर्त नहीं है। कुछ अन्य शर्तें भी हैं।

ऊपर लिखे का अभिप्राय यह है कि पढ़े-लिखे विद्वानों के घर में उत्पन्न बालक को पठन-पाठन का अधिकार है। संस्कार तब ही हो सकेंगे, जब घर के लोगों में संस्कारों का चलन होगा। साथ ही कहा है—

गर्भाष्टमेऽब्दे कुर्वीत ब्राह्मणस्योपनयनम्।
गर्भादेकादशे राज्ञो गर्भात्तु द्वादशे विशः॥

—मनु० 2-36

अर्थ है—ब्राह्मण बालक का गर्भ से आठवें वर्ष में, क्षत्रिय बालक का गर्भ से ग्यारहवें वर्ष में और वैश्य बालक का गर्भ से तेरहवें वर्ष में यज्ञोपवीत संस्कार करें।

यहाँ इतना समझ लेना चाहिए कि यज्ञोपवीत देने पर बालक अथवा बालिका को गुरुकुल भेजा जाता था। अतः यह आयु गुरुकुल जाने की है और ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य गुण, स्वभाव वाले बालक के विषय में ही यह कहा है। अगले श्लोक में लिखा है कि बालक का वर्ण कैसे विदित हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ब्रह्मवर्चसकामस्य कार्यं विप्रस्य पञ्चमे।
राज्ञो बलार्थिनः षष्टे वैश्यस्येहार्थिनोऽष्टमे।।

—मनु० 2-37

अर्थ है—(ब्रह्म वर्चस्) वेदाध्ययन करने की सामर्थ्य वाले का पठन-पाठन पाँच वर्ष की आयु में आरम्भ कर दें। क्षत्रिय सम्बन्धी जीवन के इच्छुक की छठे वर्ष में और धन लाभ के काम में रुचि रखने वाले वैश्य की आठवें वर्ष में शिक्षा आरम्भ कर दें।

इन पृथक्-पृथक् कथनों का अभिप्राय है कि उपनयन के उपरान्त तथा उपनयन से पूर्व क्या करे।

प्रायः सब बालकों का (किसी भी वर्ण के वे हों) पठन-पाठन पाँच वर्ष की आयु तथा किसी-किसी विशेष अवस्था में उससे भी पहले आरम्भ हो जाता है। जिन बालकों ने वेदाध्ययन करना है उनको वेद सम्बन्धी ज्ञान पाँच वर्ष की आयु में आरम्भ कर देना चाहिए। यहाँ इस श्लोक में ब्राह्मण कुमार अथवा क्षत्रिय कुमार नहीं कहा। यह कहा है कि ब्रह्म वर्चस् (वेद पढ़ने की सामर्थ्य रखने वाले) को पाँच वर्ष की वयस् से विशेष शिक्षा देनी चाहिए।

क्षत्रिय कार्य करने की इच्छा रखने वाले शारीरिक व्यायाम छः वर्ष की आयु में आरम्भ कर दें और व्यापार सम्बन्धी कार्य की इच्छा और सामर्थ्य रखने वालों को आठवें वर्ष में इस सम्बन्ध की शिक्षा देनी आरम्भ कर दें।

इसका स्पष्ट अर्थ यह है कि इस समय ही बालक-बालिका का वर्ण निश्चय होता है। जो आठ वर्ष की वयस् तक भी किसी प्रकार से कार्य में रुचि नहीं रखते, उनको शूद्र समझ आठ वर्ष के उपरान्त सेवा-कार्य के लिए उचित शिक्षा प्राप्त करने पर लगा देना चाहिए।

इन दोनों श्लोकों को साथ-साथ पढ़ने पर इनका यही अभिप्राय निकलता है कि पाँच वर्ष की वयस् से बालक की अभिरुचि देख उसे उसकी रुचि के कार्य में लगा दिया जाए। यदि बालक में वेदशास्त्र पढ़ने की अभिरुचि हो और सामर्थ्य हो और वह आठवें वर्ष तक बनी रहे तो उसे उपनयन देकर ब्राह्मण वर्ण की शिक्षा के लिए गुरुकुल में भेज दिया जाए।

इसी प्रकार बालक में यदि क्षत्रिय कर्म के प्रति रुचि हो तो छः वर्ष तक उसकी अभिरुचि देख, यदि उसकी यह रुचि ग्यारहवें वर्ष तक बनी रहे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तो उसे यज्ञोपवीत देकर गुरुकुल में क्षत्रियोचित शिक्षा के लिए भेज दिया जाए। इसी प्रकार ग्यारह वर्ष तक वैश्य-वृत्ति की रुचि हो तो उसे वैश्य सम्बन्धी शिक्षा आरम्भ कर देनी चाहिए और यदि यह रुचि बारह वर्ष तक बनी रहे तो उसे यज्ञोपवीत देकर गुरुकुल में भेज दिया जाए।

परन्तु श्लोक (मनु० 2-36) में लिखा है कि ब्राह्मण बालक, क्षत्रिय बालक और वैश्य बालक। इसका अभिप्राय यही है कि बालक के पाँच वर्ष की आयु के उपरान्त उसकी अभिरुचि देखकर उसके वर्ण का संकल्प बन जाता है और उपनयन के समय तक यह पता चल जाता है कि वह ब्राह्मण वर्ण की शिक्षा प्राप्त कर सकेगा, क्षत्रियोचित शिक्षा प्राप्त कर सकेगा अथवा वैश्यवृत्ति की शिक्षा पा सकेगा।

दोनों श्लोकों (2-36, 37) को साथ-साथ पढ़ने पर यही अभिप्राय बनता है। जो बालक बारह-तेरह वर्ष की आयु तक भी कुछ पढ़ नहीं सके, उसे शूद्र वर्ण का मान उस वर्ण का व्यवसाय स्वीकार कर लेना चााहिए। यज्ञोपवीत देते समय अवश्य किसी प्रकार की परीक्षा होनी चाहिए, जिससे पता चल सके कि उसे यज्ञोपवीत मिलना चाहिए अथवा नहीं।

इस विषय में कहा भी है।

आगे का श्लोक इस विषय में इस प्रकार है—

अत ऊर्ध्वं त्रयोऽप्येते यथाकालमसंस्कृताः।
सावित्रीपतिता व्रात्या भवन्त्यार्यविगर्हिताः॥

—मनु० 2-39

अर्थ है—जो [बालक] ब्राह्मण कार्य के लिए तैयार किया गया है, [पाँच वर्ष की वयस् से उपनयन प्राप्त करने तक] उपनयन प्राप्त नहीं कर सका, वह व्रात्य कहाता है।

इसका अर्थ भी स्पष्ट ही है कि उपनयन देने से पूर्व उपनयन प्राप्त करने की योग्यता देखी जाती थी। केवल माता-पिता का वर्ण देखकर शिक्षा नहीं दी जाती थी। व्रात्य पढ़ा-लिखा शूद्र ही मानना चाहिए।

अतएव, वेद की शिक्षा प्राप्त करने से पूर्व शिक्षा प्राप्त करने की योग्यता होनी चाहिए, तब ही वेद की शिक्षा दी जा सकती है।

कॉलेज में प्रवेश लेने से पूर्व स्कूल की शिक्षा आवश्यक होती है। कॉलेज में शिक्षा प्राप्त करने से पूर्व परीक्षा ली जाती है। स्कूल की परीक्षा में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उत्तीर्ण विद्यार्थी ही कॉलेज में शिक्षा पाने का अधिकारी माना जाता है। अतएव, हम द्विज का अर्थ इस प्रकार मानते हैं कि जो पहले ब्राह्मण, क्षत्रिय तथा वैश्य कर्म में रुचि रखते हों, फिर जिन्होंने उसके लिए शिक्षा प्राप्त की हो, ऐसा द्विज शिक्षा समाप्त करे तथा फिर विवाह कर गृहस्थ बने।

जो बालक उच्च शिक्षा पाने की योग्यता और सामर्थ्य न रखते हों, उनको किसी प्रकार की सेवा में लग जाना चाहिए। गृहस्थ धर्म का तो वे भी पालन करेंगे, परन्तु उनके लिए विद्या समाप्त कर समावर्तन संस्कार का विधान नहीं है। वे जब चाहें और यदि सामर्थ्य रखते हों तो विवाह कर लें और गृहस्थ पालन करें।

यहाँ एक बात ध्यान देने योग्य है। यजुर्वेद में जो गृहस्थ पालन का विधान बताया है और उसके अनुरूप जो शिक्षा वहाँ कही है, वह शूद्रों के लिए भी है।

ऊपर जो विधि-विधान तथा उपनयन की बात कही है, वह वेद में नहीं कही। वेद में जब शिक्षा की बात आरम्भ की गई तब क्षत्रिय, ब्राह्मण इत्यादि का नाम नहीं लिखा।

अभिप्राय यह है कि यजुर्वेद की शिक्षा मानव-समाज के लिए है। ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र के लिए भी है। इतना ही नहीं वरन् चारों वर्णों से बाहर वालों के लिए भी है। यह ठीक है कि शूद्र स्वयं वेद पढ़ नहीं सकेंगे। स्वयं वेदार्थ समझ, उसकी शिक्षा का पालन नहीं कर सकेंगे। उन्हें किसी वेद के विद्वान् से वेदार्थ ज्ञान प्राप्त कर जीवन चलाना चाहिए।

परन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि वे वेद में कही बात को सुनकर उस पर आचरण नहीं कर सकते।

यजुर्वेद (26-2) में कहा है कि वेद वाणी मानवमात्र के लिए है। यदि ऐसा है तो वह प्रत्येक मनुष्य के आचरण के लिए भी है।

:: 4 ::

मनुस्मृति में कहा है कि द्विज गुरुकुल से शिक्षा प्राप्त कर आए तो अपने ही वर्ण की लड़की से विवाह कर गृहस्थ चलाए। इस कारण यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रश्न उपस्थित होता है कि गृहस्थ चलाने में विवाह आवश्यक है क्या? वेद इसमें क्या कहता है?

हमारा मत यह है कि गृहस्थ पालन के लिए विवाह सहायक होता अवश्य है, परन्तु गृहस्थ के लिए विवाह अनिवार्य नहीं है। सामान्य भाषा में गृहस्थ से अभिप्राय पति-पत्नी तथा बाल-बच्चों से लिया जाता है। परन्तु इनके बिना भी गृहस्थ का पालन हो सकता है।

तो गृहस्थ क्या है? पहले इसको समझना चाहिए। यह गृहस्थ आश्रम में पालन करने योग्य सामाजिक कर्मों का अध्ययन करने से स्पष्ट होगा।

गृहस्थाश्रम में पंच महायज्ञ और पाँच ऋणों से उऋण होने की बात कही है। यह कहा है कि इनमें यजमान सपत्नीक बैठें। इस विषय में बाल्मीकि रामायण के उत्तर काण्ड में एक कथा कही है। राम ने अयोध्या पहुँचकर सीता का त्याग कर दिया था। सीता को अयोध्या से बाहर भेज दिया गया। इस बीच राम ने अश्वमेध यज्ञ किया तो पत्नी के समीप न होने के कारण सीता की एक स्वर्ण मूर्ति राम के साथ के आसन पर बैठा दी गई। इस प्रकार यज्ञ की रीतिपूर्ण की गई।

इस कथा की सत्यता अथवा मिथ्यात्व पर कुछ भी न कहते हुए हम यह बताना चाहते हैं कि इस कथा के लेखक के मन में यह बात अंकित थी कि यंज्ञ में पुरुष को सपत्नीक उपस्थित होना चाहिए।

परन्तु हम समझते हैं कि यज्ञ में पत्नी के अतिरिक्त भी उसका कोई प्रतीक हो सकता है। राम ने अश्वमेध यज्ञ में सीता की मूर्ति स्थापित की थी परन्तु कोई मूर्ति के स्थान पर, गृहस्थ के अन्य कर्त्तव्यों में अपनी सहयोगिनी अथवा सहायक को भी बैठा सकता है। अतः प्रश्न यह उपस्थित होता है कि अन्य कर्त्तव्य क्या हैं?

इन कर्त्तव्यों को समझने के लिए यज्ञ का अर्थ समझ लेना चाहिए। देवयज्ञ एक प्रकार का यज्ञ है जिसमें अग्नि प्रज्वलित कर वेदमंत्रों के साथ घी, समिधा, सुगन्धित द्रव्य होम किए जाते हैं। परन्तु यज्ञ तो सहस्रों प्रकार के हैं। अर्थात् मनुष्य-जीवन में यज्ञ किसी भी कर्म को कहा जा सकता है, जब उसको एक उद्देश्य विशेष से किया जाए। भगवद्गीता में नौ प्रकार के यज्ञ कहे हैं। यदि यह कहा जाए कि संसार के सब कार्य इन नौ प्रकार में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आ जाते हैं तो अतिशयोक्ति नहीं होगी। गीता में यज्ञ की एक सामान्य परिभाषा की गई है, वह इस प्रकार है—

ब्रह्मार्पणं ब्रह्म हविर्ब्रह्माग्नौ ब्रह्मणा हुतम्।
ब्रह्मैव तेन गंतव्यं ब्रह्मकर्मसमाधिना॥

—भ० गीता 4-24

अर्थ है—जो यज्ञ में अर्पण किया गया है, वह ब्रह्म ही है। हवि जो यज्ञ में प्रयोग होने योग्य है, वह भी ब्रह्म ही है। जो यज्ञ में प्रयोग हो गया, वह भी ब्रह्म है। इस (यज्ञ) से जो कुछ प्राप्त होने वाला है वह सम्पन्न हुआ ब्रह्म कर्म (महान कर्म) ही है।

दैवमेवापरे यज्ञं योगिनः पर्युपासते।
ब्रह्माग्नावपरे यज्ञं यज्ञेनैवोपजुह्वति॥

—भ० गीता 4-25

अर्थ है—कुछ लोग देवता आदि के उद्देश्य से यज्ञ करते हैं [उनके मन में परमात्मा नहीं होता] और कोई (ऊपर के श्लोक में कहे अनुसार) परमात्मा से ही कर्म का यज्ञ करते हैं।

इन दोनों का अभिप्राय है कि कुछ लोग देवताओं की प्राप्ति के लिए, वायु की शुद्धि के लिए, उसमें सुगन्धि के लिए और उससे अधिक वर्षादि के आह्वान के लिए यज्ञ करते हैं और दूसरे परमात्मा को ही सर्वस्व अपर्ण करने के लिए यज्ञ करते हैं।

इसका अर्थ यह भी है कि कुछ लोग प्राकृतिक दिव्य शक्तियों [अग्नि, बिजली, जल, वायु इत्यादि] से लाभ उठाने के लिए यज्ञ करते हैं—और कुछ आत्मोन्नति के लिए यज्ञ [यत्न] करते हैं।

गीता के प्रवक्ता का कथन है कि ये दूसरे प्रकार के लोग श्रेष्ठ हैं। इस सबका अभिप्राय है कि संसार में कर्म दो उद्देश्यों से किए जाते हैं। एक तो सांसारिक सुख-सुविधा की प्राप्ति के लिए और दूसरे परमात्मा की प्राप्ति के लिए। ये दूसरी प्रकार के लोग ब्राह्मी गति को प्राप्त करते हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य के सब कर्म यज्ञरूप हैं। उनको दो उद्देश्यों से किया जाता है। एक तो सांसारिक सुख की प्राप्ति के लिए और दूसरे अपने परमात्मा तक पहुँचने में अग्रसर होने के लिए। दोनों ही यज्ञरूप होते हैं, जब—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

R 089.9143
GUR-Y
Central Library
167963
Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञशिष्टामृतभुजो यान्ति ब्रह्म सनातनम्।
नायं लोकोऽस्त्ययज्ञस्य कुतोऽन्यः कुरुसत्तम॥

—भ० गीता 4-31

अर्थ है—जो लोग यज्ञ से बचे हुए [यज्ञ शेष] का ही प्रयोग करते हैं [और सब कुछ पूर्ण यज्ञ के लिए ही दे देते हैं] वे परमात्मा को पाते हैं।

इसका अभिप्राय यह है कि कोई भी कर्म किया जाए, जब उस कर्म से उत्पन्न फल को, मुख्य रूप से उसी कर्म में ही हवन [प्रयोग] कर दिया जाए और कर्म से बचा हुआ अंश (यज्ञ-शेष) ही अपने लिए प्रयोग किया जाए तो वह कर्म [यज्ञ] परमात्मा के निमित्त ही समझा जाएगा।

जब देवयज्ञ किया जाता है तो आहुति देने के उपरान्त घी वाले चम्मच को एक जल के पात्र के ऊपर ले जाते हैं। पात्र के साथ लगी घी की एक-आध बूँद जल में गिर जाती है और यज्ञ के उपरान्त वहाँ कुछ आज्य [घी] एकत्रित हो जाता है। वह यज्ञ का शेष भाग कहाता है। यह कहा है कि इस प्रकार यज्ञ से शेष बचे हुए को ही अपने प्रयोग में लाने वाले का वह कर्म यज्ञ ही कहलाएगा और यज्ञ का फल देगा।

इस प्रकार जीवन के सब कार्य यज्ञमय हो सकते हैं, यदि उनसे प्राप्त फल में से अपने लिए केवल मात्र उतना ही प्रयोग में लाये जितना अपना जीवन चलाने के लिए आवश्यक है। शेष, उस कर्म [हवन] पर ही लगा दिया जाए।

यदि हम यज्ञ को इस दृष्टि से देखें तो ये सब कार्य सपत्नीक भी किए जा सकते हैं और पत्नी के बिना भी किए जा सकते हैं।

क्योंकि यज्ञ लोक-कल्याण का कार्य होता है, इस कारण यज्ञ करने वाला यदि यजमान पुरुष हो तो कोई स्त्री उसकी सहायक होनी चाहिए, जिससे यज्ञ के लाभ को पुरुष और स्त्री दोनों समाजों में वितरित किया जा सके।

इसमें पत्नी हो तो सर्वोत्तम है। यदि किसी कारण से पत्नी न हो तो स्त्री वर्ग में से वितरण कार्य को सफलता से कर सकने वाली किसी भी स्त्री का सहयोग प्राप्त कर लेना चाहिए।

जीवन के ऐसे कर्म भी हो सकते हैं जो पत्नी न होने पर भी किए जा सकते हैं। इसी कारण वेद में यजमान पद सदा द्वि-वचन में नहीं कहा गया।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजमान पति-पत्नी भी हो सकते हैं, बहन-भाई भी हो सकते हैं, सखा-सखी भी हो सकते हैं अथवा कार्य में सहयोगी पुरुष-स्त्री भी हो सकते हैं और अकेला पुरुष अकेली स्त्री भी हो सकती है। यह यज्ञ कार्य के उद्देश्य पर निर्भर करता है।

विवाह स्वयं एक यज्ञ है। इस कारण उस यज्ञ में पति-पत्नी दो का होना आवश्यक है। परन्तु विवाह-कार्य सहस्रों यज्ञ कार्यों में से एक है। अतएव पंच महायज्ञ में यजमान विवाहिता अथवा अविवाहिता हो सकता है।

यजुर्वेद में यज्ञ, देवयज्ञ के संकुचित अर्थों में नहीं लिया गया। यह इस वेद के आरम्भ में ही स्पष्ट कर दिया गया है। हम पुस्तक के मूल अंश में इस विषय में विस्तार से कहेंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रथम अध्याय

प्रथमः खण्डः

यह संसार

पूर्व इसके कि हम वेद में गृहस्थाश्रम का विधि-विधान बताएँ, वेद के अनुसार इस पृथिवी पर की स्थिति का वर्णन करते हैं। पृथिवी, जिस पर मनुष्य उत्पन्न हो गया है, एक वस्तुस्थिति है। इस पृथिवी पर की स्थिति का ही वर्णन आवश्यक समझा गया है। इस कारण यजुर्वेद अपने प्रथम मंत्र में ही कहता है—

इषे त्वोर्ज्जे त्वा वायव स्थ देवो वः सविता प्रार्पयतु श्रेष्ठतमाय कर्मणऽआप्यायध्वमघ्न्याऽइन्द्राय भागं प्रजा-वतीरनमीवाऽअयक्ष्मा मा वस्तेन ईशत माघशꣳसो ध्रुवाऽ अस्मिन् गोपतौ स्यात बह्वीर्यजमानस्य पशून्पाहि॥

—यजुः 1-1

इस मंत्र का देवता है—सविता अर्थात् सूर्य।

मन्त्रार्थ है—(देवः सविता त्वा इषे ऊर्ज्जे प्र अपर्यतु वः वायवः स्थ श्रेष्ठतमाय कर्मणे आप्यायध्वम्;)

[परमात्मा कह रहा है] सूर्यदेव तुमको [यजमान को] अन्न [अभिप्राय उस सब सामग्री से है, जो जीवन-कार्य चलाने के लिए चाहिए] से और ऊर्जा [शक्ति सामर्थ्य] से युक्त करे, [जिससे सब लोग] प्राणी मात्र, जिनमें गति की शक्ति स्थित है वे श्रेष्ठतम कर्म करने की सामर्थ्य पा जाएँ।

(इन्द्राय भागं यजमानस्य बह्वीः पशून् अघ्न्याः प्रजा-वतीः अनमीवाः अयक्ष्माः सः ध्रुवाः पाहि;)

शारीरिक शक्ति के अनुसार यजमान के पशु [गऊएँ, बकरियाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इत्यादि] जो न मारी जाने योग्य हैं, बहुत संतान वाली हों, निरोग ज्वर-रहित हों [और] स्थिरता से स्थित हों। [अर्थात् यजमान के जीवन काल तक उसके पास बनी रहें।]

(अस्मिन् वः गौपतौ ईशत मा अघशः स्यात स्तेनः) हमारे विस्तार [उन्नति] को हानि पहुँचाने वाले चोर न पनपें।

मंत्र में 'त्वा' शब्द यजमान के लिए प्रयुक्त हुआ है। परमात्मा अथवा मंत्र का ऋषि कह रहा है कि सूर्य तुमको अन्न तथा शक्ति से युक्त करे, जिससे तुम सब लोगों का कल्याण कर सको। वः शब्द सब प्राणियों के लिए प्रयुक्त हुआ है।

'सविता' का अर्थ सर्व-उत्पादक परमात्मा भी किया जा सकता है। इस पर भी इस मंत्र में सूर्य की स्तुति ही की गई है।

यजुर्वेद के आरम्भ में यजमान [गृहस्थ प्राणी] को यह कहा गया है कि इस पृथिवी पर सबका पालक सूर्य है।

मनुष्य जीवन के लिए दो परमावश्यक पदार्थ हैं। एक अन्न और दूसरी ऊर्जा [अन्न तथा शक्ति]। दोनों ही पदार्थ इस पृथिवी पर सूर्य से प्राप्त होते हैं। अन्न में भी जो ऊर्जा का संचय होता है, वह सूर्य-रश्मियों से ही प्राप्त होता है।

सरल पदार्थों कार्बन ड़ाइऑक्साइड (CO_2) और जल (H_2O) मिलकर ही अन्न के सब पदार्थ बनाते हैं और ये दोनों सरल पदार्थ बिना सूर्य रश्मियों द्वारा संयुक्त किए स्टार्च, अन्न इत्यादि में बना नहीं सकते, न ही प्रोटीन पदार्थ बन सकते हैं। यही प्राणी का भोजन और शरीर की शक्ति का स्रोत हैं। ये सूर्य से ही प्राप्त होते हैं।

वर्तमान उन्नत तकनीकी ज्ञान भी सूर्य की किरणों के अतिरिक्त कोई साधन नहीं जान सका; जिससे जीवन के लिए आवश्यक ये दोनों पदार्थ बन सकें।

इसी कारण इस मंत्र में सूर्य की महत्ता बताई है। यजमान [गृहस्थ प्राणी] के सब कार्य उसके शरीर और शरीर में की शक्ति से ही होते हैं और इस मंत्र में कहा है कि सूर्य, कर्म करने वाले प्राणी के शरीर को अन्न और ऊर्जा से युक्त करे, जिससे वह श्रेष्ठतम कर्म कर सके।

यजमान के पशु भी अन्न और ऊर्जा से युक्त हों, परन्तु उनको मारने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वाले चोर-डाकू उत्पन्न न हों।

अतः पहले ही मंत्र में 'यजमान' शब्द है। यजमान का अर्थ है यज्ञ करने वाला और यज्ञ से अभिप्राय है जीवन के कार्य। अतः यज्ञ अर्थात् जीवन-कार्य को सम्पन्न करने के लिए सूर्य की महत्ता इस मंत्र में प्रकट की है। सूर्य अन्न और शक्ति देने वाला स्रोत हैं। ये दो वस्तुएँ ही यजमान के जीवन का आश्रय हैं।

यजमान (एक गृहस्थ) के लिए जीवन यज्ञ (जीवन चलाने के कार्य) बिना सूर्य की सहायता के सम्पन्न नहीं हो सकते। सूर्य से किस प्रकार सहायता ली जाए? सूर्य के तेज का प्रयोग किन सिद्धान्तों के अनुसार होना चाहिए, यह यजुर्वेद का विषय नहीं है। इसका वर्णन ऋग्वेद में मिलता है।

यहाँ तो केवल यही बताया है कि पृथिवी पर जीवन चलाने के लिए सूर्य महान् सहायक है। उससे सहायता लेनी चाहिए। श्रेष्ठतम कर्मों को करने के लिए अन्न और ऊर्जा का प्रयोग हो। किस प्रकार प्रयोग हो? इस विषय में अगला मंत्र है।

जैसा कि ऊपर कहा है यजुर्वेद में यजमान का अभिप्राय गृहस्थ आश्रम वासी है। साथ ही गृहस्थ का अभिप्राय सदा विवाहित नहीं होता वरन् जो पंच महायज्ञ करता है। अगले मंत्रों में बात स्पष्ट कर दी गई है। मंत्र है—

वसोः पवित्रमसि द्यौरसि पृथिव्यसि मातरिश्वनो घर्मोऽसि विश्वधाऽअसि। परमेण धाम्ना दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्॥

वसोः पवित्रमसि शतधारं वसोः पवित्रमसि सहस्रधारम्। देवस्त्वा सविता पुनातु वसोः पवित्रेण शतधारेण सुप्वा कामधुक्षः॥

—यजुः 1-2, 3

इन मंत्रों का देवता है 'यज्ञ'।

मन्त्रार्थ है—(वसोः पवित्रम् असि द्यौः असि पृथिवी असि मातरिश्वनः घर्मः असि विश्वधाः परमेण धाम्ना दृꣳहस्व) हे यज्ञ! तू पवित्र करने वाला है, तू सूर्य है, तू पृथिवी है [ये दोनों ही यज्ञस्वरूप हैं।] तू मातरिश्वन से उत्पन्न ऊष्मा है [मातरिश्वनः वह वायु है जो गर्मी उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करती है।] तू [यज्ञ] विश्व की धारणा करता है, तू दूर स्थित [जगत् से भी परे] धाम को दृढ़ करने वाला है। [अगले जन्म में भी फल देने वाला है।]

(मा ह्वाः मा ते यज्ञ-पतिः ह्वार्षीत्) उस [यज्ञ] को मत छोड़, उस यज्ञ के स्वामी परमात्मा को दृढ़ता से पकड़े रखो।

(वसोः शत-धारम् सहस्त्र-धारम् पवित्रम् असि) यज्ञ! तू सैकड़ों और सहस्त्रों धाराओं में [विधाओं में] कार्य करने वाला, पवित्र करने वाला है।

(त्वा देवः सविता पुनातु) तुम [गृहस्थ] को सूर्यदेव पवित्र करें।

(वसोः पवित्रेण शत-धारेण सुप्वा काम् अधुक्षः) हे यज्ञ करने वाले यजमान! सहस्त्र धाराओं से भली प्रकार शुद्ध करने वाले छन्न से किसको तू दुहता (छानता) है, इस यज्ञ द्वारा तू किससे सफलता प्राप्त करता है? (अर्थात् परमात्मा से।)

इन मंत्रों से स्पष्ट होता है कि अनेकानेक कार्य जो गृहस्थ आश्रम में करनीय होते हैं, वे सब यज्ञरूप ही हैं। यज्ञ के विषय में समझ लेना चाहिए। यह शब्द यजुर्वेद में अनेक स्थलों पर प्रयुक्त हुआ है।

'यज्ञ शब्द' यज् धातु से उत्पन्न है। यज् का अर्थ (धातु पाठानुसार) देव पूजा संगति कारण दानेषु है। अर्थात् विद्वानों की पूजा (सत्कार) दान अर्थात् धर्मार्थ देना और संगतिकरण अर्थात् संघटनात्मक कार्य करना।

ऊपर के मंत्रों में कहा है कि सहस्त्रों प्रकार के कार्य यज्ञ हो सकते हैं। जगत्-रचना भी यज्ञ-कार्य ही है जो परमात्मा की ओर से हो रहा है। संगति के जो कार्य दूसरों के सहयोग से हों और दूसरे के हित के लिए हों, वे यज्ञ ही होते हैं।

संगति अर्थात् संगठनात्मक कार्य से अभिप्राय कोई व्यवसाय अथवा उद्योग भी हो सकता है। जब कहीं बहुत से लोग मिलकर सांझे हित के लिए कार्य करें, तब निःसन्देह वह कार्य केवल एक के हित में नहीं होगा, वरन् बहुत से प्राणियों के हित में होगा। अतः वह कार्य यज्ञ-कार्य होगा।

इसका अभिप्राय है कि जब भी कोई कार्य निष्काम भाव से किया जाए तो वह कार्य यज्ञ होता है।

इन दो मंत्रों (यजुः० 1-2, 3) में यह बताया गया है कि गृहस्थ अपने सब कार्य यज्ञ रूप होकर करे, तब वे कार्य उसे पवित्र करने वाले होंगे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यज्ञ-कार्य का अर्थ हम ऊपर बता चुके हैं। जब कोई भी कार्य सर्वहिताय हो तो वह कार्य यज्ञ-रूप होता है और मनुष्य-जीवन को पवित्र करता है।

कार्य वास्तविक हित करने वाला होना चाहिए। वास्तविक हित क्या है, यह बताना ही तो वेद शिक्षा का उद्देश्य है। यह इस पुस्तक में स्थान-स्थान पर प्रकट करते रहेंगे।

अभी तक इतना ही बताया है कि एक गृहस्थ को अपने सब कार्य सर्वहिताय अर्थात् यज्ञ के रूप में करने चाहिए। तब वे कर्त्ता के जीवन को पवित्र करने वाले अभिप्राय यह कि उसकी अवस्था को उन्नत करने वाले होंगे।

उदाहरण के रूप में, नई दिल्ली में एक व्यक्ति कपड़े की दुकान करता है। प्रश्न यह किया जा सकता है कि वह कार्य (दुकान के व्यवसाय) को सर्वहिताय कैसे कर सकता है? उसके पास बेचने के लिए माल ऐसा है जो धनी लोग ही खरीद सकते हैं। निर्धन लोग न वहाँ खरीदने आते हैं और न ही उनके लिए कपड़ा उस प्रकार की महँगे भाड़े की दुकान पर बेचा जा सकता है।

प्रश्न यह है कि वह दुकानदार कैसे अपने कार्य को सर्वहिताय कर सकता है। इसमें वेद एक उपाय बताता है। यजुर्वेद का एक मंत्र इसी विषय पर है—

होता यक्षदश्विनौ छागस्य हविषऽआत्तामद्य मध्यतो मेदऽउद्भृतं पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्या गृभो घस्तां नूनं घासेऽअज्राणां यवसप्रथमानाꣳ सुमत्क्षराणाꣳशतरुद्रिया-णामग्निष्वात्तानां पीवोपवसनानां पार्श्वतः श्रोणितः शितामतऽउत्सादतोऽङ्गादऽङ्गादवत्तानां करतऽएवाश्विना जुषेताꣳहविर्होतर्यज॥

—यजुः 21-43

इस मंत्र का देवता है—'होत्रादयो' अर्थात् होता आदि। 'होता' यज्ञ करने वाले को कहा है और 'आदि' से अभिप्राय है—उस यज्ञ में अन्य सहायक लोग।

नई दिल्ली के दुकानदार के उदाहरण में 'होता' है—दुकान का

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वामी। आदि से अभिप्राय है वे लोग, जो उस कर्म में सहायक होते हैं अथवा जो उस दुकान की उन्नति में भाग लेने में सहायक हैं।

अब देखना चाहिए कि मंत्र क्या कहता है। मंत्रार्थ को देखने से पूर्व उपस्थित उदाहरण में दो बातों का अर्थ समझ लेना चाहिए।

यज्ञ में हवि उसको कहा जाता है, जो सब प्रकार का व्यय करने के उपरान्त बचे। जैसे हवन में आहुति देने पर जो कुछ बचता है, वह हवि है। इस नई दिल्ली वाली दुकान की अवस्था में माल का दाम, दुकान का किराया, सरकारी टैक्स, सेवकों और प्रबन्धकों का वेतन, लगी पूँजी का ब्याज और मालिक के निर्वाह योग्य को निकालकर तथा अन्य खर्च निकालकर जो कुछ बचे, वह हवि है। जैसे देवयज्ञ में अग्नि में भस्म हो जाने वाले घी-सामग्री इत्यादि पदार्थ हवि हैं।

यहाँ इतना ध्यान रखना चाहिए कि धन का ब्याज उतना ही होना चाहिए जो सत्य रूप में व्यापार में प्रचलित है। स्वामी को भी अपना भाग उतना ही निकालना चाहिए जितना निर्वाह के लिए आवश्यक हो।

इन सब प्रकार के खर्चों के उपरान्त जो कुछ बचे वह इस दुकान रूपी यज्ञ की हवि है। मंत्र में कहा है—

(होता अश्विनौ यक्षत् छागस्य हविषः आत्ताम्) दोनों यज्ञ करने वाले छाग की हवि प्रयोग करते हैं।

यदि यज्ञ का अर्थ कनॉट प्लेस नई दिल्ली की दुकान होगा तो अश्विनः के अर्थ होंगे—मालिक तथा कर्मचारी। अभिप्राय यह कि यज्ञ करने वाले ये दोनों हैं। छाग का अभिप्राय है हवि। जैसा कि हमने ऊपर वर्णन किया है, सब प्रकार के खर्चे निकालकर जो बचे, वह हवि है। उसी को छाग कहा है। मंत्र में कहा है कि स्वामी और कर्मचारी बैठें; लाभ को सामने रख लें और उसका बँटवारा इस प्रकार करें। आत्ताम् का अभिप्राय है—उस हवि का भोग [प्रयोग] करें।

(मध्यतः मेदः उद्-भृतम् पुरा द्वेषोभ्यः पुरा पौरुषेय्याः गृभः) मुख्य भाग जो साररूप हो, उसे सावधानी से पृथक् कर लो, पूर्व इसके कि कोई द्वेष करने वाला अथवा बलपूर्वक छीनने वाला ले जाए। [इसका अभिप्राय है कि शुद्ध लाभांश में जो मुख्य भाग है, वह पृथक् कर सावधानी से सुरक्षित रखो, जिससे चोर-डाकू तथा विरोधी डाका न डाल सकें। यह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्मरण रखना चाहिए कि स्वामी और कर्मचारियों में छुपाने की बात नहीं कही है।]

(नूनम् घस्ताम् घासेऽअज्राणाम् यवस-प्रथमानाम् सुमत्क्षराणाम् शतरुद्रियाणाम् अग्निष्वास्वात्तानाम् पीवः-उपवसनानाम्) निश्चय से, यह जो साररूप में पृथक् किया है, इसका प्रयोग करो। पहले उनको दो जो पहले बुलाने पर आए हैं अर्थात् जो इस व्यवसाय में पुराने, पहले से काम करने वाले हैं [Senior employees]। दूसरे उनको दो जो प्रबंध करने वाले हैं; जिनके प्रबंध से यज्ञ अर्थात् व्यवसाय में सफलता मिली है।

जो बहुत हो-हल्ला करने वाले हैं, जो भूखे चिल्ला रहे हैं अर्थात् जरूरतमंद हैं और उनमें यह मुख्य साररूप वाले जो अग्नि (energy) की विद्या को जानने वाले हैं (अभिप्राय है—बिजली, पानी और यदि कोई मशीन लगी हो तो उसकी देख-रेख करने वाले हैं)। यह हवि के उस भाग के विषय में कहा है, जो साररूप है—

(शितामतः पार्श्वतः श्रोणितः उत्सादतः अङ्ग-अङ्गात् अवत्तानाम्) शेष बचा हुआ; कहा है—दाएँ और बाएँ, नीचे के भाग का लाभांश बाँट-बाँटकर उनको दो जो फटे-पुराने वस्त्रों में हैं अर्थात् निर्धन हैं। यहाँ दान-दक्षिणा से अभिप्राय है।

इस प्रकार बाँटा हुआ लाभांश वेद के अनुसार यज्ञरूप होगा।

यहाँ यह नहीं कहा कि लाभ का शेष निकालते समय स्वामी और कर्मचारी कितना-कितना वेतन लें, जिसे लेने के उपरान्त हवि का वितरण किया जाए। हम समझते हैं कि यह कोई सिद्धान्तात्मक बात नहीं थी। इस कारण इसे यहाँ नहीं कहा।

[इस पर भी एक व्यवसाय में लाभ के बँटवारे का एक आधार यह हो सकता है कि स्वामी और सेवक व्यवसाय में जो-जो काम करते हैं, उसमें से उनको उतना-उतना ही वेतन के रूप में निकालना चाहिए जितना बाजार में उनका मूल्यांकन होता हो। छोटे से छोटा काम करने वाले से लेकर बड़े से बड़ा काम करने वाले को यह समझ लेना चाहिए कि वह यदि वैसा ही काम करने के लिए किसी अन्य व्यवसाय में नियुक्त हो तो क्या वेतन उसे मिल सकेगा। इस प्रकार चपरासी और सफाई करने वाले से लेकर स्वामी तक उतना ही वेतन के रूप में ले लें। पीछे जितना बचे, उसे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उसी अनुपात में बाँट लें, जिस अनुपात में उनके वेतन हैं। दान-दक्षिणा को भी खर्च में डालकर लाभांश निकालना चाहिए। जो हवि का फालतू भाग है उसे निर्धनों में बाँटने के लिए कहा है।]

यह बँटवारा काल और परिस्थितियों के ऊपर निर्भर करता है। वेद की व्यवस्था सिद्धान्तात्मक है।

घर-गृहस्थी में यजमान पति-पत्नी होते हैं। व्यवसाय में स्वामी और सेवक होते हैं। अतः जब वार्षिक हानि-लाभ का चिट्ठा बने तो इस चिट्ठे को समक्ष रखकर उक्तलिखित व्यवहार करने से व्यवसाय यज्ञरूप कहायेगा।

इस प्रकार यजुर्वेद में यज्ञ के अर्थ किये हैं। वेद में यज्ञ का अर्थ देवयज्ञ नहीं है। देवयज्ञ का उद्देश्य दूसरा है। यजुर्वेद में जो कहा है कि यज्ञ की सैकड़ों और सहस्रों धाराएँ हैं, वहाँ यही अभिप्राय है कि जीवन के अनेकों कार्य हैं, जिनको यज्ञरूप करने से जीवन पवित्र होता है और उन्नत होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीयः खण्डः

उक्त मंत्र में वर्णित सिद्धान्त के अनुसार हवि के बँटवारे पर कुछ लोग वेदों में समाजवाद कहे जाने की कूक लगाने लगे हैं। हमारा निश्चित मत है कि इसका यह अभिप्राय नहीं है।

समाजवाद शब्द निर्माण हुआ है यूरोप में। यह शब्द वेद में कहीं नहीं है। न समाजवाद है, न वैदिक समाजवाद है। दोनों की परछाईं मात्र भी वेद में नहीं है। इस कारण हम अपना कर्त्तव्य समझते हैं कि यहाँ यह स्पष्ट कर दें कि आज प्रचलित समाजवाद शब्द का क्या अर्थ है? समाजवाद का अर्थ है कर्मचारी वर्ग का देश में राज्य और समाज की प्रत्येक गतिविधि ऐसे राज्य के अधीन। इस दिशा में ही सब समाजवादी देश जा रहे हैं और इसकी पराकाष्ठा कम्युनिस्ट देशों में है। समाजवाद केवल आर्थिक प्रपंच नहीं है। यह समाज की सब गतिविधियों को राज्याधीन करने का प्रपंच है। यहाँ तक कि इसमें व्यक्ति शून्य है और कर्मचारियों से समर्थित उनका राज्य सर्वेसर्वा है।

ऐसा प्रपंच वेद में नहीं है। ऊपर के अध्याय में दिये मंत्र (यजुः० 21-43) में यह कहीं नहीं कहा कि यज्ञ की हवि (उपलब्धि) देश के राज्याधीन कर दी जाए और राज्य इसका बँटवारा करे। इसके विपरीत, इस मंत्र में यह कहा है कि हवि (नकद लाभ) को बीच में रखकर दोनों (पति-पत्नी अथवा स्वामी-कर्मचारी) बैठ जाएँ।

बीच में रखने का अभिप्राय है कि वे जान लें कि शुद्ध लाभ क्या है। उसमें से मुख्य और साररूप को पृथक् सुरक्षित कर लें जिससे चोर, डाकू अथवा बल से ले जाने वाले न ले जा सकें। राज्य भी न ले जा सके। लाभ दोनों परस्पर बाँट लें। जो आसपास का भाग (अर्थात् गौण अंश) है, जो

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भिक्षा माँगने आए हों उनको दें अर्थात् दान-दक्षिणा में वितरित करें।

'शतपथ ब्राह्मण' यजुर्वेद पर व्याख्यान है। यज्ञरूप गृहस्थ जीवन के विषय में शतपथ ब्राह्मण इस प्रकार अपना प्रवचन आरम्भ करता है—

व्रतमुपैष्यन्। अन्तरेणाहवनीयं च गार्हपत्यं च प्राङ्तिष्ठन्नपऽउपस्पृशति तद्यदप उपस्पृशत्यमेध्यो वै पुरुषो यदनृतं वदति तेन पूतिरन्तरतो मेध्या वाऽआपो मेध्यो भूत्वा व्रतमुपायानीति पवित्रं वाऽआपः पवित्रपूतो व्रतमुपायानीति तस्माद्वाऽअप उपस्पृशति॥

—शतपथ ब्रा० 1-1-1-1

अर्थ है—

[गृहस्थ में प्रवेश करने वाला मनुष्य] व्रत लेता है। आह्वनीय और गार्हपत्य अग्नियों के बीच पूर्वाभिमुख खड़ा होकर जल को स्पर्श करता है। जल क्यों छूता है? इसलिए कि मनुष्य अपवित्र है। वह अनृत [ऋतों के विपरीत—(against natural laws) कहता है। जल के स्पर्श से उसकी शुद्धि हो जाती है, जिससे ऋतों के अनुसार रहने की प्रवृत्ति जाग पड़ती है।] प्रयोजन यह है कि पवित्र होकर व्रत ले। जल वस्तुतः पवित्र है। पवित्र जल के द्वारा पवित्र होकर वह व्रत ले।

आगे कहा है—

सोऽग्निमेवाभीक्षमाणो व्रतमुपैति। अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतामित्यग्निर्वै देवानां व्रतपतिस्तस्माऽएवैतत्प्राह व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यतामिति नात्र तिरोहितमिवास्ति॥

—शतपथ ब्रा० 1-1-1-2

अर्थ हैं—

आह्वनीय अग्नि की ओर देखकर, वह व्रत लेता है [यह कथन यजुः (1-5) से संबंधित है] हे अग्नि! मैं व्रतों का पालन करना चाहता हूँ। मैं व्रत पालन कर सकूँ।

शतपथ ब्राह्मण के इस कथन का अभिप्राय यह है कि गृहस्थ में प्रवेश लेने वाला दो अग्नियों के मध्य में खड़ा होकर यह वचन ले। वह आह्वनीय अग्नि की ओर देखकर मंत्र (यजुर्वेद 1-5) में कहे का व्रत ले। पूर्ण मंत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार है—

अग्ने व्रतपते व्रतं चरिष्यामि तच्छकेयं तन्मे राध्यताम्। इदमहमनृतात् सत्यमुपैमि॥ (यजु० 1-5)

मंत्रार्थ—(**अग्ने व्रत-पते चरिष्यामि**) हे व्रतों के पालक अग्नि! मैं व्रत लेता हूँ।

(**तत् शकेयं तत् मे राध्यताम्**) उसके करने में मैं समर्थ होवूँ। उसको पूर्ण कीजिए।

(**इदं अहं अनृतात् सत्यं उप ऐमि**) इनसे [इस व्रत से] मैं ऋतों से विपरीत न होकर [जीवन में] मैं सत्य [परमात्मा के नियमों] का पालन करूँ।

अभिप्राय यह है कि गृहस्थ पालन करने वाला मनुष्य घर पर दो प्रकार की अग्नियाँ प्रज्वलित करे अर्थात् एक गृहस्थी, अपनी शक्ति का व्यय दो दिशाओं में करे। एक आह्वनीय अर्थात् परोपकार के कार्यों में और दूसरे गार्हपत्य अर्थात् घर- गृहस्थी को चलाने के लिए।

अग्नि [प्राण] तो प्रत्येक मनुष्य में है। उसमें कार्य करने की शक्ति उत्पन्न हो रही है। उस शक्ति को दो भागों में बाँट दे। एक भाग से परोपकार के कार्य करे और दूसरे से वह अपना गृहस्थ जीवन चलाये।

ब्रह्मचर्याश्रम, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम में शारीरिक सामर्थ्य का यह विभाजन नहीं होता। वहाँ तो एक ही विधा (दिशा) होती है जिसमें मनुष्य अपनी सामर्थ्य का प्रयोग कर सकता है। ब्रह्मचर्याश्रम में विद्याध्ययन ही एक कार्य है करने को। वानप्रस्थ में पारिवारिक उलझनों से बाहर हो अपना ध्यान आत्मोन्नति की ओर लगाना ही कार्य है और संन्यास आश्रम केवल लोक-कल्याण का कार्य ही करने के लिए है।

अतः, इन तीन आश्रमों (ब्रह्मचर्य, वानप्रस्थ और संन्यास आश्रम) में तो सामर्थ्य (अग्नि) को एक ही दिशा में प्रयोग करने का अवसर होता है। इस कारण केवल गृहस्थाश्रम ही है, जिसमें मनुष्य अपनी सामर्थ्य को दो विधाओं में प्रयोग कर सकता है।

अतः, शतपथ ब्राह्मण का प्रवक्ता कहता है—गृहस्थाश्रम में प्रवेश करते ही मनुष्य दो अग्नियों को प्रदीप्त करे अर्थात् अपने परिश्रम के फल को दो दिशाओं में व्यय करे। एक घर-गृहस्थी चलाने के लिए और दूसरे

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परोपकार के कार्य के लिए।

परोपकार के कार्य को आह्वनीय अग्नि कहा है और वेदमंत्र (यजुः 1-5) में यजमानों को ऐसा व्रत लेने को कहा है।

आह्वनीय अग्नि की ओर देखकर व्रत ले, इसका अभिप्राय यह है कि वह यह स्मरण रखे कि उसने अपने सामर्थ्य के एक भाग को लोक-कल्याण में व्यय करना है।

यहाँ अग्नि का अभिप्राय शरीर की सामर्थ्य है। जैसे लोग कहते हैं, मैं अपना जवानी की सौगंध खाकर कहता हूँ। कुछ भाष्यकार यहाँ अग्नि का अभिप्राय परमात्मा से लेते हैं।

कुछ भी हो, गृहस्थ जीवन में प्रवेश करने वाला व्यक्ति, (यजमान) इस आश्रम में प्रवेश करते हुए अपने गृह में दो प्रकार की अग्नियाँ जलाए। ऐसा वेद का कहना है और जो अग्नि आह्वनीय अर्थात् परोपकार के कार्यों के लिए जलाई गई है, उसको ध्यान में रखकर वह यह प्रण ले कि वह इस अग्नि को जीवन-भर जलाए रखेगा। और जो-जो कार्य इससे करने का वह व्रत लेता है, उनको पूर्ण करेगा। ऐसा करते हुए वह ऋतों का पालन करेगा और ऋत विरोधी व्यवहार का त्याग करेगा। वह परमात्मा से प्रार्थना करता है कि वह इस व्रत पालन में उसकी सहायता करे।

वह व्रत लेने की बात यजुः० (1-5) में कही है और फिर मंत्र (2-28) तक इस गृहस्थाश्रम में करणीय बातों का वर्णन किया है। यजुः 2-28 में कहा है—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि॥

—यजुः० 2-28

मंत्रार्थ—(अग्ने व्रत-पते व्रतम् अचारिषम्) हे अग्ने! तू सब व्रतों का पालन करने वालों का स्वामी है। मैंने अपना व्रत पालन किया है।

(तत् अशकम् तत् मे अराधि) उस [व्रत पालन] में मैं सामर्थ्यवान् हुआ हूँ और मैंने उसको पूर्ण किया है।

(यः अहम् इदम् अस्मि सः अस्मि) जैसा मैं इसको करना चाहता था, वैसा कर सका हूँ।

गृहस्थ आयु के परिपक्व होने पर संन्यास लेते हुए यजमान इस मंत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के अनुसार विचार करे।

यह विचार तो तब ही किया जा सकता है जब एक गृहस्थ पूर्ण गृहस्थ जीवन में दोनों प्रकार के जीवन कार्यों को करता रहा होगा। यजु: 1-5 से लेकर 2-28 तक इस जीवन की मुख्य-मुख्य बातों के विषय में ही कहा है।

हम इस पुस्तक में इसी विषय पर अपने ज्ञान और विचारानुसार प्रकाश डालने का यत्न कर रहे हैं। हमारी इस पुस्तक में इन दो मंत्रों के बीच के मंत्रों की ही व्याख्या है।

गृहस्थ जीवन इतना विस्तृत और विविध प्रकार का है कि उसकी सब विधाओं का वर्णन इन मंत्रों में विस्तार से तो दूर रहा, संक्षेप में भी नहीं किया जा सका होगा। इस पर भी हमारा विचार है कि गृहस्थ जीवन की मुख्य-मुख्य सब बातें, सिद्धान्त रूप में इन मंत्रों में वर्णन कर दी गई हैं।

इतना जान लेने से एक विचारशील मनुष्य जीवन की ऊँच-नीच को पार करने का मार्ग पा सकेगा, ऐसा हमारा विश्वास है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीयः खण्डः

यह उचित था कि गृहस्थ जीवन के विषय में लिखने से पूर्व इसका कार्य अर्थात् उद्देश्य बताया जाता कि यह आश्रम अर्थात् जीवन का यह भाग क्या करने के लिए है? वेद में यह कहा है—

कस्त्वा युनक्ति स त्वा युनक्ति कस्मै त्वा युनक्ति तस्मै त्वा युनक्ति। कर्मणे वां वेषाय वाम्॥

—यजुः० 1-6

मंत्रार्थ—(**कः त्वा युनक्ति**) किसने तुम्हें [इस आश्रम में] युक्त किया [इस आश्रम में प्रविष्ट होने की प्रेरणा दी] है?

(**सः त्वा युनक्ति**) उसने [परमात्मा ने] तुम्हें इस काम पर नियुक्त किया [लगाया] है।

(**कस्मै त्वा युनक्ति**) किस अर्थ [परमात्मा ने] तुम्हें इस [आश्रम] में आने की प्रेरणा दी है?

[**तस्मै त्वा युनक्ति**] उस कार्य के लिए [जिसे अगले मंत्रों में वर्णन किया जा रहा है] तुम्हें नियुक्त किया है।

(**वां वेषाय वाम् कर्मणे**) शुभ कर्मों के लिए नियुक्त किया है।

इस मंत्र में कहा है कि इस आश्रम में बेकार बैठे रहने का स्थान नहीं है। कर्म करना होगा। एक बात और कही है। इस आश्रम को स्वीकार करने की प्रेरणा परमात्मा ने दी है। यह कैसे?

दो प्रकार के लोग इस आश्रम को ग्रहण करते हैं। एक जो विवाह करने की इच्छा करते हैं और दूसरे जो कर्म करने की लालसा रखते हैं। वैसे तो विवाह भी एक कर्म विशेष है। परन्तु विशेष होने से हमने इसे शेष कर्मों से पृथक् रखा है। विवाह के अतिरिक्त कर्म से हमारा अभिप्राय है

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समाज तथा भूमण्डल में ख्याति एवं उन्नति लाभ करना। ये दोनों प्रेरणाएँ ईश्वर-प्रदत्त ही होती हैं।

परमात्मा इन दोनों की सामर्थ्य देता है। यही प्रेरणा है। विवाह की प्रेरणा भी उसकी दी हुई होती है, जिसने शरीर के जन्म, वृद्धि और पालन के नियम बनाए हैं। एक अवस्था विशेष आती है जब पुरुष-स्त्री में [विपरीत योनि वाले से] सम्बन्ध बनाने की इच्छा उत्पन्न होने लगती है। वास्तव में उस आयु में शरीर की कुछ ग्रन्थियाँ सक्रिय हो जाती हैं और उससे जहाँ सहवास की सामर्थ्य आती है, वहाँ इसकी कामना भी होने लगती है। यह शरीर का धर्म प्रकृति के नियम से ही है। वस्तुत: प्राकृतिक नियम ही ईश्वरीय नियम है। इस सामर्थ्य का उद्देश्य सन्तान निर्माण करना है।

इस कारण कहा है कि विवाह की इच्छा भी ईश्वर की प्रेरणा से होती है।

कुछ लोग किसी व्यवसाय अथवा व्यवहार में ख्याति प्राप्त करने के लिए कर्म करने के लिए उद्यत होते हैं। ये कर्म भी वे ईश्वर से प्राप्त सामर्थ्य से ही कर सकते हैं।

यही इस मन्त्र में कहा है कि कर्म करने की प्रेरणा और सामर्थ्य ईश्वर की देन है। परन्तु उस कर्म करने की सामर्थ्य का प्रयोग मनुष्य में बैठा जीवात्मा अपने विचारानुसार करता है।

ब्रह्मसूत्रों में महर्षि व्यास कहते हैं—

इतरपरामर्शात्स इति चेन्नासंभवात्॥

—ब्र०सू० 1-3-18

अर्थ हैं—इसको [सामर्थ्य को परमात्मा ने] दूसरे [जीवात्मा] की सम्मति से कार्य करने के लिए दिया हुआ है और यह असम्भव नहीं।

यहाँ अभिप्राय प्राणशक्ति से है। ब्रह्मसूत्रों का वह प्रकरण, जिसमें से उपयुक्त सूत्र हमने दिया है, प्राण के विषय में ही है।

अर्थात् मनुष्य में कर्म करने की शक्ति और इच्छा परमात्मा ने उत्पन्न की है, परन्तु वह इच्छा किस दिशा में कार्य करे, यह जीवात्मा के अपने निश्चय करने की बात है।

इस मन्त्र में तो केवल यही कहा है कि कर्म करने की इच्छा और

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सामर्थ्य परमात्मा ने उत्पन्न की है और वह सामर्थ्य तथा इच्छा, मनुष्य किस दिशा में प्रयोग करे, यह अगले मन्त्रों में कहा है।

यहाँ इतना स्मरण रखना चाहिए कि यजुर्वेद यज्ञरूप कर्म का वर्णन करता है और यह एक यजमान ही कर सकता है। यजमान का अर्थ है—यज्ञ करने वाला। इस कारण वेद मनुष्य के सब कर्मों का नाम यज्ञ रखता है। आगे वेद में वह यज्ञ किस प्रकार किया जाए, इसका वर्णन है।

वेद में यज्ञ का अभिप्राय देव यज्ञ ही नहीं है। पूर्ण गृहस्थ जीवन ही यज्ञरूप है। उसी का वर्णन वेद के इस भाग (यजुः० 1-5 से लेकर यजुः० 2-28 तक) में किया गया है। वेद के कहे अनुसार जीवन चलाना ही यज्ञ है। काठक संहिता में भी कहा है—

यज्ञो वै श्रेष्ठतमं कर्म॥

अर्थ हैं—यज्ञ श्रेष्ठतम कर्म का नाम है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

चतुर्थः खण्डः

प्रत्युटः रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तः रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। उर्वन्तरिक्षमन्वेमि॥

—यजुः 1-7

मन्त्रार्थ—(प्रति-उष्टम् रक्षः प्रति-उष्टाः अरातयः) दुष्ट की भली-भाँति परीक्षा और निश्चय कर तथा परद्रव्यापहारी [लेकर न देने वाले] की परीक्षा कर ले।

(निष्टप्तम् रक्षः निः-तप्ताः अरातयः) दुष्ट को विनष्ट कर दो और पर- द्रव्यापहारी को निर्मूल कर दो।

(उरु अन्तरिक्षम् अनु-एमि) विशाल अन्तरिक्ष में पहुँचता हूँ [अर्थात् वर्तमान से ऊँची कीर्ति के स्थान पर पहुँच सकूँ।]

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि गृहस्थाश्रम कर्म करने के लिए निर्माण किया गया है। कर्म का उद्देश्य स्व-अभ्युदय है। अभ्युदय में कुछ लोग बाधक होते हैं। उनकी बाधा किस कारण है? इस कारण को जानने से ही निश्चय होता है कि वह रक्षः [दुष्ट] है अथवा नहीं।

बाधक का उद्देश्य ही उसको देवता अथवा दुष्ट बनाता है। किसी को उन्नति करते देख कोई दूसरा उसमें बाधा कई कारणों से उपस्थित कर सकता है। बाधा इस कारण से भी हो सकती है कि बाधक समझ रहा हो कि उन्नति करने वाला दूसरों को पद-दलित करने के लिए उन्नति में संलग्न है। ऐसी अवस्था में बाधक 'रक्षः' कहा जा सकता है और उसको निस्तेज करने का वेद में निर्देश तब ही माना जा सकता है जब उन्नति करने वाले तथा उसकी उन्नति में बाधा डालने वाले के उद्देश्यों की भलीभाँति परीक्षा कर ली जाए। इसी कारण वेद में—'निष्टप्तम् रक्षः'—पद से पहले

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह कह दिया गया है—'**प्रति-उष्टम् रक्षः प्रति-उष्टाः अरातयः**'।

उब्बट इस पद का अर्थ इस प्रकार करते हैं—

प्रत्युष्टं प्रत्येकं दग्धम्। उष दाहे। अनेनाग्निहोत्रहवणीशूर्पयो प्रतपनेनात्र स्थिता राक्षसा दग्धा इत्यर्थः। अभिप्राय यह है कि हवन में हवणी और सूप को गरम कर उसके कीड़े-मकौड़ों को जला डालें।

हम समझते हैं कि वेद के ऐसे अर्थ अति संकुचित हैं। यहाँ यज्ञ को केवल देवयज्ञ ही समझा गया है। यह अशुद्ध है। वेद में यज्ञ केवल देवयज्ञ के अर्थ में नहीं है। यह हम यजुः० 1-2, 3 और यजुः० 21-43 की व्याख्या में तथा काठक ब्राह्मण के उद्धरण से बता चुके हैं। यज्ञ का अर्थ श्रेष्ठ कर्म है। वेद में इस शब्द से देवयज्ञ का अभिप्राय नहीं है।

स्वामी दयानन्द ने प्रत्युष्टं का अर्थ इस प्रकार किया है—

प्रत्युष्टम्—यत् प्रतीत च तदुष्टं दग्धं च तद्। अर्थात् जब कोई दुष्टप्रतीत हो तो उसका दोहन किया जाए।

अभिप्राय यह है कि परीक्षा कर देख लिया जाए कि बाधक हमारे कर्म में किस प्रयोजन से बाधा डाल रहा है।

यहाँ एक दो उदाहरण दिए जाएँ तो बात स्पष्ट हो जाएगी।

(1) दो कपड़ा मिल के उद्योगपति हैं। एक ने कपड़े की मिल पहले स्थापित की है। दूसरे ने पीछे स्थापित की है। कपड़े की माँग अत्यधिक है और पहला उद्योगपति मनमाना दाम प्राप्त करने के लिए दूसरे उद्योगपति के मार्ग में बाधाएँ डालता रहता है। उसका उद्देश्य न तो लोकहित में है, न ही न्यायसंगत है। पहले उद्योगपति का, दूसरे के मार्ग में बाधाएँ खड़ी करना स्वार्थ के कारण है। वह रक्षः है और वेदमन्त्र ऐसे को ही 'निष्टप्तम् के लिए कहता है।

(2) एक राजनीतिक दल है। पुराना है और अपने काल में देश-सेवा भी करता रहा है। परन्तु सत्ताधीश होने पर कुछ लोगों के विचार से देश का और देश में बसी समाज का वह अहित कर रहा है। उसका विरोध करने के लिए एक नया दल स्थापित होता है। सत्ताधारी दल शक्ति बल से दूसरे दल के सब सक्रिय सदस्यों को जेल में डाल देता है, जिससे उसका विरोध न हो सके। यह भी उसी प्रकार की बात हो जाएगी जैसे एक उद्योगपति द्वारा नये उद्योगपति को हानि पहुँचाने की है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(3) दो पड़ोसी हैं। एक ने मकान पहले बनाया है और दूसरे ने पीछे बनाना आरम्भ किया है। परन्तु दूसरे के मकान बनाने से, पूर्व बने मकान की वायु तथा प्रकाश रुक जाएगा। इस कारण वह दूसरे के मकान बनने में बाधक होता है।

इस प्रकार के अनेक उदाहरण दिए जा सकते हैं। इसी कारण मन्त्रार्थ में प्रत्युष्टं का अर्थ परीक्षा करके विरोध करना ठीक बनता है।

परीक्षा कैसे की जाएगी? इसके लिए राज्य की नियुक्ति है। आदिकाल में राज्य की स्थापना इसी कारण हुई थी, जब कुछ स्वार्थी लोग दूसरे के उपार्जित धन वैभव को छीनने लगे थे। यह निर्णय करने के लिए कि कौन नेक है और कौन दुष्ट है, स्मृति शास्त्रों की रचना की गई है।

परन्तु राज्य की स्थापना हुए सहस्त्रों-लाखों वर्ष व्यतीत हो चुके हैं। इस पर भी रक्षः [दुष्ट जनों] का निःशेष नहीं हुआ। तो क्या किया जाए? अब स्थिति यह हो गयी है कि प्रायः राज्य भी न्यायदृष्टि नहीं रखते। विशेष रूप में जब से राज्य में प्रजातंत्र का चलन हुआ है। राज्य दलीय होने से पक्षपात से रहित नहीं रह सका।

इसमें वेद का मत यह है कि मनुष्य ईमानदारी से, अपनी निर्मल बुद्धि से विचार कर व्यवहार करे। निर्मल बुद्धि जो निर्णय करेगी, वही सत्य निर्णय हो सकेगा। तब रक्षः को निष्टप्तं करना क्षम्य होगा।

इसी प्रकार 'अरातयः' का अर्थ समझने की आवश्यकता है। जो लेकर न दे अथवा जो दे ही नहीं, वह अरातयः कहा जाता है। इसके अर्थ इस प्रकार किए जा सकते हैं—जो न दे, अर्थात् दान-दक्षिणा न दे अथवा जो ऋण लेकर न चुकाए।

जो प्राकृतिक पदार्थों का लाभ तो उठाए परन्तु उनका प्रतिकार प्रकृति को न दे। प्रकृति को प्रतिकार न देने का अभिप्राय यह है कि प्राकृतिक पदार्थों के प्रयोग से जो दोष उत्पन्न होते हैं, उनको दूर करने का उपाय न करे। जैसे नगरों की जलवायु को शुद्ध रखना है। वह अरातयः होगा।

कर्मचारी वेतन लेकर कार्य न करे अथवा स्वामी काम कराकर वेतन न दे, दोनों अरातयः कहे जाएँगे।

इस प्रकार 'प्रत्युष्टम्' और 'अरातयः' के व्यापक अर्थ लेने चाहिएँ। यही वेद का अभिप्राय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

'निष्टप्तम्' के विषय में भी समझ लेना चाहिए। इसका अर्थ हत्या करना नहीं है। निष्टप्तम् का अर्थ है दुष्ट तथा अरातय: को ऐसा कर दे कि वह पुनः दुष्टता अथवा हरामखोरी करने में असमर्थ हो जाए।

राज्य दण्ड-विधान का भी यही अभिप्राय है। राज्य किसी अपराधी को दण्ड इस कारण नहीं देता कि राज्य का उससे किसी प्रकार का द्वेष होता है। वरन् इस कारण कि दुष्ट को पुनः दुष्टता न करने के स्वभाव वाला बना दिया जाए।

फाँसी दण्ड का भी यही अभिप्राय है। जब कोई दूसरों की हत्या अपने किसी स्वार्थ के कारण अथवा दूसरों को हानि पहुँचाने के लिए करता है तो उस हत्यारे को पुनः किसी की हत्या करने के अयोग्य कर देना चाहिए। उसको नष्ट कर दिया जाए अर्थात् उसे दूसरे को नष्ट करने की सामर्थ्य से रहित कर दिया जाए।

यदि किसी हत्यारे के पुनः हत्या करने से रुक जाने की सम्भावना हो अर्थात् वह पश्चात्ताप करे तब फाँसी का दण्ड नहीं देना चाहिए। फाँसी का दण्ड उनके लिए है जो स्वभाव से दुष्ट हैं। यही निष्टप्तं का अभिप्राय है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पंचमः खण्डः

गृहस्थ प्राणी किसी भी कार्य को करने से पहले यह देख ले कि उसने दो प्रकार के लोगों को अपने मार्ग से पृथक् कर ही कार्य आरम्भ करना है।

एक तो वे लोग हैं जो प्रकृति से दुष्ट हैं; जो विरोध किसी उद्देश्य से नहीं करते प्रत्युत विरोध करने के लिए ही विरोध करते हैं। उनको निस्तेज कर ही अपना गृहस्थ आरम्भ करना चाहिए।

गृहस्थ आरम्भ करने पर विवाह एक आवश्यक कार्य माना जाता है। उसमें भी जब वर को विवाह के लिए वेदी पर बैठाया जाता है तो उससे पुरोहित यह कहलवाता है—

ओं वर्ष्मोऽस्मि समानामुद्यतामिव सूर्यः।
इमं तमभितिष्ठामि यो मा कश्चाभिदासति॥

—पा०गृ० 1-3-6

वर आसन पर बैठते हुए कहता है—मैं जो इस आसन [पति के स्थान] पर बैठता हूँ, यह जीवन-भर बैठूँगा और हे ओजस्वी लड़की! ऐसा व्यवहार करूँगा कि कोई मुझे दास न बना सके।

इस प्रकार वेद का यह आदेश है कि गृहस्थाश्रम में प्रवेश करने से पूर्व इस प्रकार के व्यक्तियों से जो दास बनाने का यत्न करते हों, बचने का यत्न करे।

गृहस्थी को यह कहा गया है कि उसे अपना कार्य यज्ञरूप होकर करना है। यज्ञ का एक संक्षिप्त-सा विवरण यजुः. 1-2, 3 में और 21-43 की व्याख्या में हमने दे दिया है। यदि कोई व्यक्ति ऐसे कार्य में बाधक है तो निःसन्देह वह लोक-कल्याण के अतिरिक्त किसी अन्य कारण से बाधा डाल रहा होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परन्तु जब बाधा इस कारण हो कि बाधक भ्रमवश यह समझ रहा है कि यजमान (गृहस्थ में प्रवेश लेने वाला) लोक-कल्याण का नाम लेते हुए भी लोक-कल्याणी नहीं कर रहा, तब बाधक दुष्ट (रक्ष)) नहीं कहा जा सकता। यह विरोध, मतभेद के कारण हो सकता है। ऐसी अवस्था में इनको भी निःशेष करने की सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए परमात्मा से प्रार्थना की गई है। कहा है—

धूरसि धूर्व धूर्वन्तं धूर्व तं योऽस्मान् धूर्वति तं धूर्व यं वयं धूर्वामः। देवानामसि बह्नितमꣳ सस्नितमं पप्रितमं जुष्टतमं देवहूतमम्॥

—यजुः 1-8

मन्त्रार्थ—(**धूः असि धूर्व तं धूर्वन्तं**) तू दुष्टों का अथवा दुर्गुणों का नाश करने वाला है। इस कारण उन दुर्गुणों तथा दुष्टजनों का तू नाश कर।

(**यः अस्मान् तं धूर्वति**) जो हमारा नाश करते हैं, तू उनका नाश कर।

(**यं वयं धूर्वामः तं धूर्वं**) जिसको हम नाश करने का [यत्न करते हैं] उसका तू नाश कर।

(**देवानाम् असि**) तुम [हे परमात्मा] इन देवताओं के [उत्पादक] हो।

(**वह्नि-तमम् सस्नि-तमम् पप्रि-तमम् जुष्ट-तमम् देवहूतमम्**)। तू अग्निस्वरूप है, [यह देवताओं के उत्पादक होने से ही सिद्ध होता है] (अग्नि से अभिप्राय है शक्ति का स्रोत अर्थात् परमात्मा) शुद्धिकारक [है] साधन प्राप्त कराने वाला, संयोग निर्माण करने वाला [अपने से सम्बन्ध बनाने वाला] अथवा प्राकृतिक दिव्य गुण-युक्त पदार्थों के बनाने वाले देवताओं की स्तुति वाला [उनके गुण, कर्म, स्वभाव को जानने वाला] है।

[इस कारण हे परमात्मन्! तुम हमारी सहायता करो।]

यह मंत्र प्रार्थनासूचक ही है। इससे पूर्व के मंत्र में तो केवल सिद्धान्तरूप में ही कहा है कि हम दुष्टों का तथा लेकर न देने वालों का नाश करें। और इस मंत्र में परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह इसमें हमारी सहायता करे।

वेद में जहाँ मनुष्य को कुछ करने के लिए कहा है, अथवा जहाँ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा से किसी प्रकार की प्रार्थना की गई है, वहाँ यह उस ऋषि की ओर से ही है जो मंत्र का प्रवक्ता है

यहाँ वेद के छन्द, मंत्र, ऋषि तथा देवता के विषय में बता दिया जाए तो ठीक रहेगा।

'छन्द अपा: की रश्मियों पर आरूढ़' परमात्मा के ज्ञानसूचक पद हैं। वह हम भूमिका में स्पष्ट कर चुके हैं। वहाँ हमने ऋषियों के विषय में भी बताया है।

देवता मंत्र का विषय होता है। वैसे देवता प्राकृतिक दिव्य गुणयुक्त पदार्थ भी होता है। आदि सृष्टि में ऋषियों ने उन छन्दों को अनुभव किया और उसके अर्थ बताए। यही ऋषियों का कर्त्तव्य था। उनमें से कुछ ऋषियों ने वेद-शाखाओं में वेदार्थ पर भी प्रकाश डाला है। इस पर भी हम शाखाओं में वेद-वाक्य की महिमा और ऋषि की व्याख्या में अन्तर समझते हैं। मंत्र मुख्य हैं। शाखा उनके अनुकूल होने पर ही माननीय होती है।

यह ठीक है कि ऋषि विशेष ज्ञान के स्वामी रहे हैं। इस पर भी वे मूल ज्ञान के तुल्य प्रतिष्ठा नहीं रख सकते। दोनों में भेद होने पर वेद ही माननीय है, शाखा का वाक्य नहीं।

प्रश्न उपस्थित होता है कि क्या वे छन्द एक समय में ही उत्पन्न हुए और ऋषियों द्वारा सुने गये अथवा वे अब भी उत्पन्न हो रहे हैं?

हमारा मत है कि ईश्वरीय छन्द अर्थात् वे आलौकिक विचार-तरंगें आज भी प्रसारित हो रही हैं। हाँ, वे ऋषि जो उनको समझकर बता सकें इस भू पर उत्पन्न नहीं हो रहे अथवा कभी-कभी ही उत्पन्न होते हैं और जब भी वे अथवा उनमें से कोई इस पृथिवी पर उत्पन्न होता है तो वह किसी न किसी ईश्वरीय नियम की अर्थात् ऋत की व्याख्या कर जाता है जो पहले मनुष्यों को ज्ञात नहीं थी अथवा ज्ञात थी, परन्तु भूल चुका था।

वर्तमान युग में विज्ञान के सिद्धान्तों को प्रकट करने वाले वैज्ञानिक भी, वास्तव में, इसी कोटि के ऋषि हैं। कोई पूर्ण रूप में तो कोई आंशिक रूप में।

कई बार ऐसा भी होता है कि कुछ लोग किसी एक कार्य विशेष अथवा सिद्धान्त विशेष का ही प्रतिपादन करते हैं। ऐसा करते हुए वे अपनी स्थिति से लाभ उठाकर कुछ ऐसी बातें भी करने लगते हैं जिनके लिए

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उनका जन्म नहीं हुआ अथवा करने की उनकी सामर्थ्य नहीं होती। तब उनकी वे बातें मानकर तथा उनको व्यवहार में लाकर सामान्य लोग दुःख, कष्ट तथा विपत्ति की सृष्टि करते हैं।

इस कारण वेद की निरुक्ति करने वालों ने यह सिद्धान्त बताया है कि वेद (परमात्मा के ज्ञान) की अथवा उन वक्तव्यों की परख तीन प्रकार से की जा सकती है।

(1) सर्वप्रथम यह देखना चाहिए कि उनका कथन प्रकृति के नियमों के विरुद्ध तो नहीं है। प्रकृति के नियम नित्य सृष्टि में कार्य कर रहे देखे जा सकते हैं।

उदाहरण के रूप में यदि कोई अपने को परमात्मा का संदेशवाहक (पैगम्बर) कहने वाला यह कहे कि उसने चाँद को उँगली के संकेत से काटकर अपनी आस्तीन में छुपा लिया है, जिससे यह पूर्णिमा के चाँद से कटा हुआ दिखाई देता है तो यह प्राकृतिक नियम के विपरीत होने से ईश्वरीय कथन नहीं हो सकता है।

(2) वेद (ईश्वरीय ज्ञान) पहले कही बात के विपरीत नहीं हो सकता। परस्पर विरोधी कथन किसी सर्वज्ञ के कथन नहीं हो सकते। या तो पहले कही बात अशुद्ध होगी अथवा जो अब कही है, वह अशुद्ध है।

(3) ऐसी परस्पर विरोधी बातों में निर्णय युक्ति से किया जाना चाहिए। युक्ति-युक्त बात ही ईश्वरीय ज्ञान हो सकती है।

परन्तु युक्ति करने का भी एक नियम है। युक्ति को तर्क कहते हैं और तर्क के लक्षण ब्रह्मसूत्र में इस प्रकार किये गए हैं—

तर्काप्रतिष्ठानादप्यन्यथानुमेयमिति चेदेवमप्यविमोक्ष प्रसङ्गः।

—ब्र० सू० 2-1-11

अर्थ हैं—तर्क अप्रतिष्ठित होने से अनुमेय में भी अविमोक्ष का प्रसंग हो जाएगा।

अभिप्राय यह है कि तर्क का आधार प्रत्यक्ष पर आधारित होना चाहिए। जब भी उक्त तीन कसौटियों से विदित हो कि ईश्वरीय वाणी के नाम से प्रसारित की जा रही बात ठीक नहीं उतर रही तो उसका त्याग कर देना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

षष्ठः खण्डः

अह्रुतमसि हविर्धानं दृꣳहस्व मा ह्वार्मा ते यज्ञपतिर्ह्वार्षीत्।
विष्णुस्त्वा क्रमतामुरु वातायापहतꣳ रक्षो यच्छन्तां पञ्च॥

यजु० 1-9

इस मंत्र का देवता है—'विष्णु'; विष्णु अर्थात् सर्वव्यापक परमात्मा।

मंत्रार्थ—(अह्रु तम् असि) तू कुटिलता से रहित है [अर्थात् सबके साथ एक रस है।]

(हविः धानम् दृꣳहस्व मा ह्वाः) तू हवि का धारण करने वाला है। [हवि वे पदार्थ हैं जो किसी यज्ञ में आहुति (व्यय करने) के लिए रखे जाएँ और फिर यज्ञ में शुद्ध होकर यज्ञ में भाग लेने वालों में वितरित किए जाएँ।]

इस प्रकार किसी उद्योग में कच्चा माल (Raw material) और फिर निर्मित माल अथवा उद्योग में लाभ हवि है। [अतः हवि किसी व्यवसाय में पूँजी भी हो सकती है और फिर उसमें प्राप्त होने वाला लाभ भी हो सकता है] यह हम (यजुः 21-43 के अर्थों में) समझा चुके हैं।

इस मंत्र में परमात्मा को सम्बोधित कर कहा है कि तू यज्ञ में प्रयोग होने वाली हवि और उसमें होने वाले लाभ को धारण करने वाला है।

मंत्र में कहा है कि परमात्मा हवि का धारण करने वाला है और यजमान को चाहिए कि वह इसे नष्ट न करे।

[यहाँ नष्ट न करने का अभिप्राय है कि यजमान अथवा उद्योगपति इस कच्चे माल और उद्योग से होने वाले लाभ का सदुपयोग करें। परमात्मा इसकी रक्षा करे और उद्योगपति भी जन-जन के हित में इसका प्रयोग करें।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ते यज्ञ-पतिः ह्वार्षीत्) तेरे [यज्ञ, लोक-कल्याण निमित्त] भाग का यज्ञपति—यज्ञ करने वाला—नाश न करे। [अर्थात् प्राकृतिक पदार्थों को व्यर्थ मत गँवाए। यज्ञ में परमात्मा का भाग है लाभ का आह्वनीय भाग]

(विष्णुः त्वा क्रमतां उरु वाताय अपहतम् रक्षः पंच यच्छन्ताम्) व्यापक [परमात्मा] उन यज्ञ साधनों को क्रम से वायु के लिए ऊँचे उठाए [वृद्धि करे], दुष्ट अथवा दुर्गुणों का नाश करे। यजमान पाँच प्रकार से यज्ञ में यत्न करे।

एक उद्योग में भी उद्योगपति को चाहिए कि पाँच प्रकार से उद्योग को उन्नति दे। पूँजी, पुरुषार्थ, पराक्रम, परिचर्या (सेवकों की सेवा) तथा परमात्मा के सहाय से उद्योग की उन्नति करे।

इस मंत्र में भी सर्वव्यापक परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह गृहस्थ के यज्ञरूपी कार्य में सहायक होवे।

वेद आस्तिकता का प्रतिपादक है। उसमें परमात्मा को एक सिद्ध सत्ता माना गया है। इन मंत्रों में उसके अस्तित्व को सिद्ध करने का यत्न नहीं किया गया; परन्तु अन्य स्थलों पर ऋषियों ने परमात्मा को युक्ति से सिद्ध करने का यत्न किया है।

उदाहरण के रूप में ब्रह्मसूत्रों में आरम्भ में ही यह सूत्र है—

जन्माद्यस्य यतः ॥

—ब्र० सू० 1-1-2

अर्थ है—जिससे इस सृष्टि का जन्म, पालन और प्रलय होता है, वह ब्रह्म है।

मूल प्रकृति, जो इस जगत् का उपादान कारण (Material cause) है, तम मानी गई है। वह अचल है, अन्धकारमय है। उसमें गति उत्पन्न करने वाला परमात्मा है।

किसी अचल वस्तु में स्वतः गति उत्पन्न नहीं होती। वह सिद्धान्त प्रत्यक्ष प्रमाण से पता चला है। ब्रह्मसूत्र के प्रवक्ता ने इस प्रकार कहा है—

व्यतिरेकानवस्थितेश्चानपेक्षत्वात् ॥

—ब्र० सू० 2-2-4

अर्थ है—उल्टी गति नहीं हो सकती बिना किसी दूसरे के प्रभाव के। युक्ति और प्रत्यक्ष से एक योरुपीय वैज्ञानिक न्यूटन ने भी इस नियम

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

का प्रतिपादन किया है। वह कहता है—

प्रकृति का प्रत्येक कण खड़ा है तो खड़ा ही रहता है और चलता है तो सीधी रेखा में एक स्थिर गति से चलता ही रहता है, जब तक कोई बाहरी शक्ति उसे विवश न करे।[1]

अतः आदि प्रकृति निश्चल से चलायमान अवस्था में आ नहीं सकती थी, यदि कोई अति महान् शक्ति इसे प्रेरित न करती।

वेद में एक अन्य स्थान पर यह कहा है कि 'आनीत् अवातम्' (निश्चल शक्ति) थी, जिसने रचना-कार्य और चलन-कार्य आरम्भ किया था। यह परमात्मा ही है। वही शक्ति-स्वरूप है। वह सर्वव्यापक भी है।

उसी सर्वव्यापक शक्ति से, जिसने यह रचना-कार्य आरम्भ किया है, यह प्रार्थना की गई है कि वह हमारे भले और सर्वहिताय कार्यों में सहायक हो।

क्या परमात्मा सहायक होता है?

वस्तुस्थिति यह है कि मनुष्य में, सब में, यज्ञपति में तथा उसके सहायकों में प्राण अर्थात् कार्य करने की शक्ति ईश्वर की ही दी हुई है। इसी (यजुः) वेद मंत्र (1-1) में कहा है कि मनुष्य में कार्य करने की शक्ति सविता देव देता है और सविता देव में शक्ति का आविर्भाव परमात्मा ने ही किया है और नित्य कर रहा है। मनुष्य जीवन सर्वथा सूर्य पर ही निर्भर करता है।

यह बात कि सूर्य द्वारा प्राप्त प्राण-शक्ति से मनुष्य कार्य करते हैं, अगले वेदमंत्र में कही गई है। वेद मंत्र है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ता-भ्याम्। अग्नये जुष्टं गृह्णाम्यग्नीषोमाभ्यां जुष्टं गृह्णामि॥

—यजुः 1-10

इस मंत्र का देवता है—'सविता' अर्थात् सूर्य।

मंत्रार्थ—(देवस्य त्वा पूष्णः सवितुः प्रसवे अश्विनोः बाहुभ्याम् हस्ताभ्याम्) परमात्मा के तुम [यज्ञरूप] पुष्टिकारक सूर्य के उत्पन्न होने से ये दोनों बाहों और हाथों से;

(अग्नये जुष्टम् गृह्णामि अग्नीषोमाभ्याम् जुष्टम् गृह्णामि) अग्नि [ऊर्जा] को स्वीकार करता हूँ। अभिप्राय है कि इसे प्रयोग में लाता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि और सोम से अभिप्राय है शक्ति को प्रज्वलित करना अथवा शान्त करना।

जैसे मनुष्य उद्योग में आवश्यकतानुसार विद्युत का प्रयोग करता है, अथवा उसे बन्द कर देता है।

इससे पूर्व के मंत्र में सर्वव्यापक परमात्मा से याचना की गई थी कि वह हमारे यज्ञ-कार्य में सहायता करे। और इस मंत्र में ऋषि कहता है कि हम परमात्मा की ऊर्जा का सहाय स्वीकार करें अर्थात् अपने उद्योग धन्धों में पाँच प्रकार के प्रयत्नों से परमात्मा द्वारा दी जा रही शक्ति का प्रयोग करें।

सूर्य की शक्ति का ही प्रयोग कर मनुष्य ने वर्तमान युग में तकनीकी उन्नति की है। तकनीकी प्रयास में जो भी और जहाँ से भी ऊर्जा प्राप्त की जाती है, वह सूर्य से ही प्राप्त हो रही है अथवा हुई है।

कोयला जलाकर गर्मी उत्पन्न की जाती है जिससे स्टीम बनती है तथा उससे मशीनें, रेलगाड़ियाँ इत्यादि चल रही हैं।

कोयला जंगलों के दब जाने से बना है। जंगल सूर्य के आश्रय बने थे। विद्युत शक्ति भी सूर्य की ही देन है। चाहे तो कोयले के जलने (पावर हाऊस में) से प्राप्त की जाए और चाहे जल प्रपात से उत्पन्न हो रही शक्ति से। यह सब शक्ति सूर्य से ही पृथिवी पर आती है। वैज्ञानिक जानते हैं कि पैट्रोल, मिट्टी का तेल इत्यादि भी सूर्य की ही देन हैं।

इस मंत्र में एक पद है—'**अग्नीषोमाभ्याम् जुष्टम् गृह्णामि**'—इस पद के शाब्दिक अर्थ हैं—अग्नि और सोम से युक्त होकर स्वीकार करता हूँ। अग्नि का अर्थ हम बता चुके हैं। सोम का अर्थ जल है। हमने सोम का अर्थ किया है शान्त अवस्था। अर्थात् बिजली चलाना और बन्द करना। इनका अर्थ गर्मी तथा जल भी हो सकता है, जैसे स्टीम इन्जन में होता है।

यही इस मंत्र में कहा है। 'दोनों बाहों और दोनों हाथों से' का अभिप्राय है सूर्य की दोनों प्रकार की रश्मियाँ (प्रकाश और ऊष्मा किरण)। प्रकाश पेड़-पौधों के हरित पर्ण द्वारा हमें प्राप्त होता है और ऊष्मा पेड़-पौधों में रासायनिक शक्ति के रूप में संचित होती है। ये दो हाथ सूर्य की बाहों (किरणों) के आगे लगे हुए हमारी सहायता कर रहे हैं। यह पूषण करने वाला अर्थात् पुष्ट करने वाला परमात्मा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सप्तमः खण्डः

अन्न और ऊर्जा के वर्णन के पश्चात् एक गृहस्थी को किस प्रकार जीवन आरम्भ करना चाहिए, इसके विषय में वेद हमें बताता है—

भूताय त्वा नारातये स्वरभिविख्येषं दृꣳहन्ताँ दुर्य्याः पृथिव्यामुर्वन्तरिक्षमन्वेमि। पृथिव्यास्त्वा नाभौ सादयाम्यदित्याऽउपस्थेऽग्ने हव्यꣳरक्ष॥

—यजुः 1-11

इस मंत्र का देवता है—'अग्निः'।

मंत्रार्थ—(भूताय न अरातये त्वा स्वः अभि-विख्येषम्) प्राणी [अरातय] लेकर न देने वाले के लिए नहीं सुख-सुविधा को देखूँ। [हमने अरातयः के विषय में पहले लिखा है। वहाँ कहा है कि यजमान यज्ञ को अपने अथवा अपने अन्न-अनाज के लिए देखे अर्थात् उसकी रक्षा का प्रबन्ध करे।]

(अनु एमि पृथिव्याः नाभौ अन्तरिक्षणम् उरु पृथिव्याम् दुर्य्याः दृꣳहन्ताम् सादयामि) इस अर्थ [प्रयोजन से] भूमि के मध्य में खुले मैदान में विशाल खुले द्वारों वाला सुदृढ़ मकान स्थापित करूँ। [पहले पद में यह कहा है कि दुष्टों से और न देने वालों से अपनी तथा अनाज की रक्षा के लिए दृढ़ दरवाजों वाला मकान बनाऊँ।]

(अग्ने हव्यम् रक्ष अदित्याः उपस्थ) हे अग्निस्वरूप परमात्मा! उसे [हमारे मकान को] हवि की रक्षा के लिए सुखमय कर दो।

गृहस्थ अपने अर्जन किये साधनों को घर के प्राणियों के लिए प्रयोग कर सके, इसलिए वह परमात्मा से प्रार्थना करता है कि उनकी वह रक्षा करे। वह केवल प्रार्थना ही न करे, वरन् प्रार्थना से पूर्व स्वयं उनकी रक्षा के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए खुली-चौड़ी भूमि पर बीचों-बीच ऊँचा प्रकाश लाने वाला और दृढ़ द्वारों वाला मकान बनाए।

एक गृहस्थ अथवा यजमान कर्म तो करेगा। परमात्मा ने अन्न के द्वारा उसमें कार्य करने की शक्ति उत्पन्न की है। इस कर्म का फल भी होगा। कर्मफल ही हवि है। उसके जीवन यज्ञ की हवि का अभिप्राय यज्ञ में प्रयोग के लिए लाया गया सामान है। यज्ञ में बचा समान जो यजमान यज्ञ करने वाले और उसके साथियों में बाँटता है (मंत्र 21-43), उसकी रक्षा करना आवश्यक है। इस कारण वह, प्रकाशयुक्त और दृढ़ दीवारों वाले गृह का निर्माण करे।

इसी सम्बन्ध में आगे कहा है—

पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ सवितुर्वः प्रसव उत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः।
देवीरापोऽअग्रेगुवोऽअग्रेपुवोऽग्रऽइममद्यं यज्ञं नयताग्रे यज्ञपतिꣳ सुधातुं यज्ञपतिं देवयुवम्॥

—यजुः० 1-12

इस मंत्र का देवता है—'अप्सवितारौ' अर्थात् अपः और सविता, दोनों।

मंत्रार्थ—(वैष्णव्यौ पवित्रे सवितुः प्र-सव स्थः) यज्ञ सम्बन्धी दो पवित्र करने वाली अथवा [अर्थात्] परमात्मा से उत्पन्न [जगत्] में स्थापित हो।

(सूर्य्यस्य अच्छिद्रेण उत् रश्मि-भिः पवित्रेण पुनामि) सूर्य से निरन्तर आने वाली और पवित्र करने वाली दो प्रकार की किरणों के द्वारा पवित्र करता हूँ।

सूर्य से आने वाली दो प्रकार की किरणें—प्रकाश और ऊष्मा की रश्मियाँ, पहले कह चुके हैं, ऊपर कहे के अनुसार बनाये मकान में यजमान स्थापित करे। वे दो प्रकार के कार्य करेंगी। प्रकाश देंगी और गर्मी भी उत्पन्न करेंगी। यह जीवन-यज्ञ के लिए आयोजन है।

(देवीः आपः अग्रेगुवः अग्रे पुवः अग्रे इमम् अद्य यज्ञम् अग्रे नयत) दिव्य गुण वाली आपः [त्रिगुणात्मक शक्ति] आगे-आगे चलें और रक्षा करें और अब इस यज्ञ को आगे बढ़ावें (उन्नत करें।)

आपः प्रकृति के परमाणु की साम्यावस्था के भंग होने पर उत्पन्न

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमाणुओं के निबन्धन हैं। इनको अहंकार अथवा परिमण्डलीय कण (Particles) कहते हैं। ये कण परमाणु के भीतर से विमुक्त ऊर्जा को अपने पर लिए होते हैं।

(यज्ञ-पतिम् सुधा-तुम् यज्ञ-पतिम् देव-युवम्) यजमान अथवा गृहस्थ सुवर्ण से और परमात्मा के बल से युक्त होवे।

इसका अभिप्राय यह है कि उस सुदृढ़ प्रकाश-युक्त गृह में रहता हुआ वह जीवन यज्ञ चलाए। इस यज्ञ में सूर्य की प्रकाश किरणों और ऊष्मा की किरणों से जो निरन्तर सूर्य से पृथिवी पर आ रही हैं, सहायता ले। इनसे जीवन का कार्य (अर्थात् यज्ञ) आगे बढ़े, उन्नत हो और मनुष्य धन-धान्य से युक्त हो जाए। सुधातुम् का अर्थ स्वर्णादि धन है।

आगे कहा है—

युष्माऽइन्द्रोऽवृणीत वृत्रतूर्य्यें यूयमिन्द्रमवृणीध्वं वृत्रतूर्य्यें प्रोक्षिता स्थ।
अग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षाम्यग्नीषोमाभ्यां त्वा जुष्टं प्रोक्षामि।
दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वं देवयज्यायै यद्वोऽशुद्धाः पराजघ्नुरिदं वस्तच्छुन्धामि॥

—यजुः 1-13

इस मंत्र का देवता है—'इन्द्र'।

मंत्रार्थ—(युष्माः इन्द्रः वृत्र-तूर्य्ये अवृणीत) तुमको (आपाः को) इन्द्र के वृत्र को मारने के लिए स्वीकार किया है। (इन्द्र का अभिप्राय है परमाणु के भीतर की त्रिगुणात्मक शक्ति। यह परमाणुओं से बने तैजस् अहंकार से प्रकट होती है।)

यह माना जाता है कि विद्युत की तार में तैजस् अहंकारों (इलेक्ट्रोन) की धारा प्रवाहित हो रही है। यहाँ इसी से अभिप्राय है। वृत्र को मारने अर्थात् पराजित करने के लिए इसे ग्रहण करने को कहा है। वृत्र है—वैकारिक अहंकार। इनके रहते तैजस् अहंकार कार्य नहीं कर सकता। इस कारण इनका हनन करने अर्थात् तैजस् के विरोध को समाप्त करने के लिए कहा है।

इन वृत्रों (प्रोटोन) को निष्क्रिय करने के लिए इन्द्र (तैजस् अहंकारों—Electrons) का प्रयोग करे। जैसे बिजली का स्विच दबाकर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिजली की धारा प्रवाहित की जाती है।

(यूयम् इन्द्रम् अवृणीध्वम् प्राउक्षिताः वृत्रतुर्य्ये स्थः) तुम [आपाः] प्रोक्षित (प्रवाहित) होकर इन्द्र को स्वीकार करो।

(अग्नये त्वा जुष्टम् प्र उक्षामि अग्नीषोमाभ्याम्) तुम (यज्ञ को) अग्नि सेवा में शक्ति के लिए, (तुम) सहायता के लिए, विद्युत को प्रवाहित करने के लिए अथवा (सोम को) शान्त करने के लिए प्रबन्ध करो। (जैसे विद्युत की धारा चालू करने के लिए अथवा उसको शान्त करने के लिए स्विच लगाया जाता है।)

(दैव्याय कर्मणे शुन्धध्वम् देवयज्यायै) दिव्य कर्म के लिए शुद्ध हवि देवयज्ञ के लिए। (शक्ति का प्रयोग उन कर्मों के लिए किया जाए जो दिव्य हैं अर्थात् जिनको मनुष्य का सामर्थ्य नहीं कर सकता। शुद्ध करने का अभिप्राय है कर्म जो करने लगे हैं, उसकी दिशा विधि, ठीक हो)

(यत् अशुद्धाः परा-जघ्नुः इदं वः तत् शुन्धामि) जो अशुद्ध है, उसका त्याग करें। हमारा यह वह है जो हमने शुद्ध (जो इन्द्र की सहायता से) किया है, उसे यज्ञ के लिए (रखो)।

हमने ऊपर उदाहरण में एक कारखाना लिया है। यही बात किसी व्यापार में, अथवा गृहस्थ के किसी अनुष्ठान (पुत्रादि के विवाहादि संस्कारों) पर भी कही जा सकती है।

अगला मंत्र इस प्रकार है—

शर्मास्यवधूतꣳरक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। अद्रिरसि वानस्पत्यो ग्रावासि पृथुबुध्नः प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु॥

—यजुः 1-14

इस मंत्र का देवता है 'यज्ञ'।

मंत्रार्थ—(शर्म असि) तू अर्थात् घर सुखकारक आश्रय स्थान है।

(अवधूतम् रक्षः अवधूताः अरातयः) दुष्टों से रक्षा किया गया, लेकर न देने वाले (चोर, ठगों) को दूर कर दिया गया है।

[यहाँ एक गृह की स्तुति की जा रही है।]

(अदित्याः त्वक् असि त्वा अदितिः प्रति वेत्तु) तू भूमि की त्वचा है। [त्वचा शरीर की रक्षा के लिए होती है। इसी प्रकार एक गृह भी सबकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

रक्षा के लिए होता है। इसे त्वचा का प्रतीक जानो।]

(अद्रिः असि वानस्पत्यः ग्रावा असि) यह गृह (पत्थर की भाँति) सुदृढ़ है। लकड़ी का ठोस बना हुआ है। (ग्रावा के अर्थ ठोस, सुदृढ़ भी हैं। अभिप्राय है कि इसके बनाने में ठोस लकड़ी का प्रयोग किया गया है।)

(पृथुबुध्नः प्रति अदित्याः त्वा त्वक् वेत्तु) विशाल नींव वाली (गृह) भूमि तुम्हें त्वचा (रक्षक) जानें (पृथुबुध्नः का अर्थ है विस्तृत स्थूल मूल नींव वाला।)

अगला मंत्र है—

अग्नेस्तनूरसि वाचो विसर्जनं देववीतये त्वा गृह्णामि। बृहद्ग्रावासि वानस्पत्यः सऽइदं देवेभ्यो हविः शमीष्व। सुशमि शमीष्व। हविष्कृदेहि हविष्कृदेहि॥

—यजुः 1-15

मंत्र का देवता यज्ञ है।

[मंत्र 1-14 भी यज्ञ के विषय में है। अभिप्राय यह है कि जीवन-कार्य के विषय में है। मंत्र (1-12) गृह निर्माण के विषय में कहा है। तदनन्तर बताया है कि गृह में सूर्य प्रकाश और सूर्य की उष्मा के लिए द्वार हों। यह प्रकाश और ऊष्मा जीवन-यज्ञ को आगे बढ़ावें। मंत्र 1-13 में कहा है कि मकान में बिजली और शक्ति के लिए अन्य स्रोत एकत्रित करो।

मंत्र 1-14 में कहा है कि गृह सुदृढ़ हो। लकड़ी ठोस लगानी चाहिए। अब मंत्र 1-15 में भी गृह के विषय में ही कहा है।]

मंत्रार्थ—(अग्नेः तनूः असि) [गृह] अग्नि (शक्ति) का निवास-स्थान है।

(वाचः वि-सर्जनम् देव-वीतये त्वा गृह्णामि) वेद वाणी के कहे जाने (उच्चारण) को देवताओं (दिव्य गुण वाले अथवा मनुष्यों) को प्रसन्न करने के लिए तुम्हें (गृह अथवा यज्ञ को) ग्रहण करता हूँ (यज्ञरूपी जीवन को ग्रहण करता हूँ।)

(सः बृहत्-ग्रावा असि वानस्पत्यः) वह बहुत बड़ा पत्थर और लकड़ी का [बना हुआ] है।

(इदम् देवेभ्यः हविः शमीष्व-सु-शमि शमीष्व हविःकृत आ इहि) देवताओं [विद्वानों] के लिए हवि भलीभाँति शुद्ध कर तैयार करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तैयार कर हवि [यज्ञ का फल] खाओ अथवा रखो।

इस मंत्र में कहा है कि उस सुन्दर, भव्य पत्थर तथा लकड़ी के बने गृह में विद्वानों के लिए हवि तैयार करो। यह हम बता चुके हैं कि गृह की स्तुति में ये मंत्र हैं। दोनों मंत्रों (1-14, 1-15) का देवता समान (यज्ञः) ही है। अभिप्राय यह है कि 'शर्मन् [मकान] यज्ञरूप ही निर्माण हुआ है। इसे घर-गृहस्थी का आश्रय स्थान समझो अथवा किसी उद्योग-धंधे का उद्योग स्थान समझो। यह विद्वानों के लिए हवि तैयार करने वाला होना चाहिए।

यहाँ एक सुदृढ़ पत्थर तथा लकड़ी से बने गृह से अभिप्राय है [सिल-बट्टा, ऊखलादि से अभिप्राय नहीं]।

अगला मंत्र है—

कुक्कुटोऽसि मधुजिह्वऽइषमूर्जमावद त्वया वयः संघातः संघातं जेष्म वर्षवृद्धमसि प्रति त्वा वर्षवृद्धं वेत्तु परापूतः रक्षः परापूता अरातयोऽपहतः रक्षो। वायुर्वो विविनक्तु देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वच्छिद्रेण पाणिना॥

—यजुः 1-16

इस मंत्र का देवता है 'वायुः' अर्थात् वह शक्ति जिससे गति उत्पन्न होती है। (गति का अभिप्राय है कर्म, जिसके लिए मकान बनाया गया है।) अब मकान के अथवा जीवन-यज्ञ के प्रयोजन का वर्णन होने लगा है।

कहा है—

मंत्रार्थ—(कुक्कुटः असि) खट-खट शब्द (वाला) तू (मकान) है।

[इसका अभिप्राय यह है कि मकान में दिन-रात खटखट होती रहती है। खटखट का अभिप्राय अगले पद में वर्णन किया गया है।]

(मधु-जिह्वः इषम् ऊर्ज्जम् आ वद) स्वादिष्ट अन्न और (उसको तैयार करने के लिए) ऊर्जा, विद्युतादि शक्ति लाने को कहो।

(वयं त्वया संघातम् संघातम् जेष्म वर्ष-वृद्धम् असि) हम तुम्हारे द्वारा (यज्ञ कर्म द्वारा) संघर्ष करते हुए सफलता को प्राप्त करें। एक वर्ष के होने पर।

(प्रति त्वा वर्ष-वृद्धम् वेत्तुः) तुमको वर्ष व्यतीत होने पर जानें

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अर्थात् वर्ष के उपरान्त लेखा-जोखा करें।)

(अरातयः रक्षः परा-पूतम् अप-हतम्) भ्रष्ट चरित्र [चोर-डाकू और दुष्टों] का नाश करके;

(वः वायुः वि विनक्तु) वायु तुमको अलग-अलग करे।

(वः देवः सविता हिरण्य-पाणिः अच्छिद्रेण पाणिना प्रति गृभ्णातु) सूर्यदेव से निरन्तर आने वाली बाहों (किरणों) और उसके हाथों से (ऊष्मा और प्रकाश से) यह सब कुछ प्राप्त कराएँ।

इस मंत्र में कहा है कि मकान बन जाने के उपरान्त तथा उसमें ऊर्जा और अन्न आ जाने के उपरान्त वर्ष के उपरान्त वर्ष हम परिश्रम करते हुए वायु द्वारा पवित्र को अपवित्र से अलग-अलग करते हैं और सूर्यदेव से प्राप्त शक्ति से हम कार्य सिद्ध करें।

प्रश्न उत्पन्न होता है कि क्या अलग-अलग करें और वायुः से क्या अभिप्राय है? कुछ भाष्यकार अर्थ करते हैं कि जब फसल कट जाती है तो अन्न को भूसे से पृथक् किया जाता है।

परन्तु पद में निरन्तर आने वाली सूर्य किरणें और उन किरणों के कल्याणकारी हाथों का वर्णन है। इससे प्रतीत होता है कि वायु से अभिप्राय केवल अन्न-अनाज के पक जाने पर उसको भूसे से पृथक् करने का अभिप्राय नहीं है।

ऊर्जा और इन्द्र का वर्णन पूर्व के मंत्रों में आ चुका है। जैसे कोई उद्योग-धंधा चलाया जाता है और उसमें ताप शक्ति से इच्छित फल को अनिच्छित फल (Waste matter) से पृथक् करने की बातें होती हैं।

सामान्य रूप में मंत्र का भाव यह है कि मकान अथवा उद्योग-धंधा, बनाया अथवा चलाया जाए तो उसमें अग्नि तथा इन्द्र को स्थापित किया जाए। तदनन्तर अन्न (उद्योग के सन्दर्भ में कच्चा माल) लाकर उससे निर्मित माल तैयार किया जाए। तदनन्तर, सूर्यदेव की निरन्तर आने वाली शक्ति से उपकारी माल को अपकारी से पृथक् किया जाए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अष्टमः खण्डः

अब विषय में परिवर्तन हो गया है। यजमान अर्थात् गृहस्थ के जीवन के विषय में वर्णन आरम्भ होता है। कहा है—

धृष्टिरस्यपाऽग्नेऽअग्निमामादं जहि निष्क्रव्यादꣳ सेधा देवयजं वह। ध्रुवमसि पृथिवीं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय॥

—यजु: 1-17

इस मंत्र का देवता है—'अग्निः'।

मंत्रार्थ—(धृष्टिः असि) तू प्रगल्भ अर्थात् निर्भय और सुयोग्य हो गया है। [यह उस गृहस्थ के विषय में कहा है जो अब बनाए घर में अथवा अपने व्यापार अथवा उद्योग में रत हो चुका है।]

(अप अग्ने जहि निष्क्रव्यादम् अग्निम् आ आमादम् सेध) हे विद्वान् मनुष्य! (जो अग्नि के समीप हो गया है अर्थात् अग्नि के प्रयोग को जान गया है, वह पके (over ripe) पदार्थों को छोड़ दे, उनका प्रयोग न करे। [उन पर अग्नि का प्रयोग न करे।] अग्नि का प्रयोग पकाने के कर्म में करे [ताजे पदार्थों को सिद्ध करने में अग्नि का प्रयोग करे।]

(देव-यजम् वह) देवयज्ञ को चलाए। [देव-यज्ञ हवन, अर्थात् अग्नि को प्रज्वलित कर घी तथा सुगन्धित द्रव्य जलाने को भी कहते हैं। परन्तु देव यजम् का शाब्दिक अर्थ है, वह कार्य जिसमें विद्वान् लोगों से सम्पर्क बने। मनुष्य को विद्वान् लोगों का आह्वान करना चाहिए और उनसे कार्यों में सहयोग लेना चाहिए।]

(ध्रुवम् असि पृथिवीं दृꣳह ब्रह्म-वनि त्वा क्षत्र-वनि सजात-वनि उपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय) तुम स्थिर होकर [अर्थात् स्थिर संकल्प

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

करके] पृथिवी को दृढ़ करो। [अपने कार्य और जीवन कार्य को स्थाई रूप देने का यत्न करो। पृथिवी से अभिप्राय है अपने को निश्चित दृढ़ आधारों पर स्थापित करो।] उसके लिए ब्राह्मण स्वभाव के, क्षत्रिय स्वभाव के और मनुष्यमात्र के लिए स्थापित करता हूँ। (परमात्मा कह रहा है कि हे गृहस्थ! तुम अपने कार्य के लिए लोगों को साथी बनाओ और मैं तुम्हारे लिए ब्राह्मण, क्षत्रिय और मनुष्यमात्र को स्थापित कर रहा हूँ।) और शत्रुओं (द्वेष करने वालों) का नाश करने के लिए प्रबन्ध किया है।

इस मंत्र का अभिप्राय यह है कि गृहस्थ अब जीवन-कार्य में रत हो गया है। वर्ष भर कार्य कर कुछ अर्जन कर चुका है। इस कारण समाज में ब्राह्मण और क्षत्रिय स्वभाव वालों से और सामान्य मनुष्यों से सम्पर्क बनाए। परमात्मा तुम्हारे शत्रुओं का नाश करेगा।

(यहाँ वैश्य स्वभाव वालों से सम्पर्क के लिए नहीं कहा। इसका कारण यह है कि वैश्य स्वभाव वाले लोग अपने लाभ के लिए स्वयं सम्पर्क बनाते हैं। कदाचित् वैश्यों के लिए ही यह मंत्र है। इस कारण वैश्य स्वभाव के लोगों का उल्लेख नहीं है।)

अगला मंत्र इस प्रकार है—

अग्ने ब्रह्म गृभ्णीष्व धरुणमस्यन्तरिक्षं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। धर्त्रमसि दिवं दृꣳह ब्रह्मवनि त्वा क्षत्रवनि सजातवन्युपदधामि भ्रातृव्यस्य वधाय। विश्वाभ्यस्त्वाशाभ्यऽउपदधामि चित स्थोर्ध्वचितो भृगूणामङ्गि-रसां तपसा तप्यध्वम्॥

—यजुः 1-18

इस मंत्र का देवता भी 'अग्निः' है।

मन्त्रार्थ—(अग्ने धरुणम् असि ब्रह्म गृभ्णीष्व अन्तरिक्षम् दृꣳह) हे अग्निस्वरूप परमात्मा! तू सबको धारण करने वाला है। वेदमंत्रों द्वारा हमारी स्तुति को ग्रहण करो और हमारे अन्तरात्मा को सुदृढ़ करो। (उसके सामर्थ्य को बढ़ाओ।)

(त्वा ब्रह्म-वनि क्षत्र-वनि सजात-वनि भ्रातृव्यस्य वधाय उप दधामि) तुम (यज्ञ) को ब्राह्मण, क्षत्रिय और सजातियों के लिए तथा शत्रुओं के वध के लिए धारण करता हूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(धर्त्रम् असि) तू धारण करने वाला है।

(दिवम् दृꣳह ब्रह्म-वनि क्षत्र-वनि सजात-वनि भ्रातृव्यस्यं वधाय उप दधामि) सूर्य को दृढ़ करता हूँ। [सूर्य की ऊर्जा को स्थिर रूप से प्रयोग करने का प्रबन्ध करता हूँ] ब्राह्मण, क्षत्रिय और सजातियों की सहायता के लिए अथवा शत्रुओं के वध के लिए धारण करता हूँ।

(त्वा विश्वाभ्य; आशाभ्यः उप दधामि) तुम (यज्ञ) को सब के लिए सब प्रकार से धारण करता हूँ।

(चितः स्थ ऊर्ध्वचित भृगूणाम् अङ्गिरसाम् तपसा तप्यध्वम्) उन्नत बुद्धि वाले विद्वान् और प्राण विद्या के जानने वालों की स्थिर चित्त, प्रयत्न से तपस्या करता हूँ अर्थात् उनकी विद्या और उपलब्धियों का लाभ उठाता हूँ।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि गृहस्थ प्राणी शक्तिरूप परमात्मा के आश्रय रहता हुआ और उसे धारण करने वाले के आशीर्वाद से ब्राह्मण, क्षत्रिय और सजातियों के सहाय को प्राप्त हो। शत्रुओं को पराजित कर सकने और प्रकाशमय सूर्य के सहाय से उन्नति करे।

गृहस्थ को कहा है कि वह परमात्मा के सहाय से और अग्नि तथा प्राण की विद्या को जानने वालों के सहयोग से जीवन चलाये।

अग्नि विद्या से अभिप्राय है विद्युत आदि शक्ति के कार्य जानने वाले और प्राण विद्या का अभिप्राय है शरीर विद्या के जानकार अर्थात् चिकित्सक।

अगला मंत्र है—

शर्मास्यवधूतꣳ रक्षोऽवधूताऽअरातयोऽदित्यास्त्वगसि प्रति त्वादितिर्वेत्तु। धिषणासि पर्वती प्रति त्वादित्यास्त्वग्वेत्तु दिवः स्कम्भनीरसि धिषणासि पार्वतेयी प्रति त्वा पर्वती वेत्त॥

—यजुः० 1-19

इस मंत्र का देवता है—'अग्निः'।

मन्त्रार्थ—(शर्म असि अवधूतम् रक्षः अवधूताः अरातयः) तू (यज्ञ अथवा मकान अथवा उद्योग) का आश्रय स्थान है। (यहाँ से) दुष्ट हटा दिया गया है और न देने वाला अर्थात् (कंजूस, चोर-डाकू इत्यादि) भगा दिया गया है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अदित्याः त्वक् असि) तू अदिति (आसपास की भूमि अथवा भूमि पर रहने वालों) की त्वक् (रक्षिका) है।

(त्वा अदितिः प्रति वेत्तु) तुम अदिति को त्वचा (रक्षक) जानो।

(धिषणा असि पर्वती त्वा प्रति अदित्याः त्वक् वेत्तु) तू जानने वाली है। (त्वक्) तुम्हें पृथिवी ज्ञानवान् जाने [यज्ञ को त्वचा कहा है। इसे ज्ञानवान् कहा है और कहा है कि ऐसा ही आसपास की पृथिवी अर्थात् उस पर रहने वाले लोग जानें। यज्ञ को ऐसा ही कहा गया है।]

(दिवः स्कम्भनीः असि) सूर्य की तुम आश्रय देने वाली (त्वचा) हो। (यज्ञ अथवा मकान को सूर्य प्रकाश का आश्रय स्थान माना है।)

(धिषणा असि पार्वतेयी त्वा पर्वती प्रति वेत्तु) तू (जो त्वचा है) धारण करने वाली, ज्ञान रखने वाली है। तुमको ज्ञानवती जानें।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि जैसे त्वचा शरीर की रक्षा करती है, वैसे ही मकान अथवा कोई यज्ञरूपी कार्य, आसपास की भूमि अथवा भूमि पर बसे प्राणियों की रक्षा करता है। तू ज्ञानवान् है, आश्रय देने वाला है और सब तुम्हें ऐसा ही जानें।

अगला मंत्र है—

धान्यमसि धिनुहि देवान् प्राणाय त्वोदानाय त्वा व्यानाय त्वा। दीर्घामनु प्रसितिमायुषे धां देवो वः सविता हिरण्यपाणिः प्रतिगृभ्णात्वाच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे त्वा महीना पयोऽसि॥

—यजुः० 1-20

इस मंत्र का देवता है—'सविता' अर्थात् सूर्य।

मन्त्रार्थ—(धान्यम् असि) तू (यज्ञ) धान्य है (खाने योग्य पदार्थ वाला है।)

(धिनुहि देवान् प्राणाय त्वा उदानाय त्वा वि-आनाय त्वा) देवताओं को (विद्वान लोगों को) प्रसन्न करो (किसलिए?) प्राणों, वायु के उदान, वायु के व्यान के लिए (स्वीकार करता है।)

[यज्ञ ही अन्न है। अर्थात् अन्नादि का उत्पन्न करना भी यज्ञ ही है। यजमान कहता है कि मैं यज्ञ करता हूँ अर्थात् अन्न उत्पन्न करता हूँ। प्राण, उदान, व्यान, वायुओं के लिए। इसका अर्थ है—शरीर के कार्यों को करने की सामर्थ्य प्राप्त करने के लिए]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(दीर्घाम् अनु प्र-सितिम्) दीर्घ आयु को विस्तार देने के लिए (अर्थात् लम्बी आयु तक कार्य (यज्ञ) करने के लिए।)

(वः आयुषे धाम्) तुमसे (यज्ञ से) लम्बी आयु को धारण करता हूँ।

(देवः सविता हिरण्य-पाणिः असि प्रति गृभ्णातु) सूर्यदेव अपने सुनहरी हाथ से [श्रेष्ठ सुखद् व्यवहार से] ग्रहण करता है।

(अच्छिद्रेण पाणिना चक्षुषे महीनाम् त्वा पयः) सम्पूर्ण हाथों से तेरे दूध समान रस को दिखाई देने वाले पृथिवी के पदार्थों को (ग्रहण करता है।)

इस मंत्र में सूर्य की स्तुति की गई है। उनके कुछ गुणों का और कर्मों का वर्णन किया गया है। इस पृथिवी पर सूर्य ही अन्न, बल, वीर्य, प्रकाश और जल को शुद्ध करने का एकमात्र साधन है। इस कार्य में जहाँ गृहस्थ को कहा है कि वह परमात्मा के गुणों को जाने; अग्निस्वरूप (तेजस्वरूप) परमात्मा को सभी उपलब्धियों का स्रोत समझ उनसे लाभ उठाये, वहाँ परमात्मा के बनाए सूर्य के गुण, कर्म और स्वभाव को जाने और उससे लाभ उठाये। जिन पदार्थों की उपलब्धि इनसे होती है, उनका नियम इस प्रकार बताया है—(1) अन्न और अन्य भोग्य सामग्री; (2) देवताओं और विद्वान् मनुष्यों का बल प्रेरणा; (3) आपान, व्यान वायु तथा (4) ऊष्मा से शुद्ध जल।

इन वस्तुओं के कथन करने का प्रयोजन यह है कि गृहस्थ इनका उचित प्रयोग करे।

परमात्मा और उसके बनाये सूर्य से यज्ञरूप कर्म के विषय में और भी कहा है—

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। सं वपामि समापऽओषधीभिः समोषधयो रसेन। सꣳरेवतीर्जगतीभिः पृच्यन्ताꣳ सं मधुमतीर्मधुमतीभिः पृच्यन्ताम्॥

—यजुः० 1-21

इस मंत्र का देवता है—'यज्ञः' (यज्ञरूप कर्म)।

मन्त्रार्थ—(सवितुः देवस्य प्र-सवे अश्विनोः बाहु-भ्याम् हस्ताभ्याम् पूष्णः त्वा सम् वपामि) पुष्टिकारक सूर्य के उत्पन्न किये

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आश्विन [दोनों] बाहों और हाथों से तुमको (अभिप्राय है यज्ञ को) फैलाता हूँ।

(सम् आपः ओषधीभिः सम् ओषधयः रसेन सम् रेवतीः जगतीभिः पृच्यन्ताम् सम् मधु-मतीः मधु-मतीभिः पृच्यन्ताम्) आपः के सहयोगी से औषधियों द्वारा, औषधियों के सहयोग से रसों के द्वारा, रेवति (सूर्य की शक्ति) के सहयोग से जगत् के द्वारा पकाये जाएँ। मिठास के सहयोग से मीठे अन्न पकाए जाएँ।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि यज्ञपति सूर्य की किरणों (शक्ति) से पुष्टि-कारक कार्य करे; औषधियों और औषधियों से अन्न में सूर्य की शक्ति उत्पन्न करे और उनको पकाए।

(परमात्मा की कृपा से प्रकृति अन्न, जल, वनस्पतियाँ देती है और उनमें रस तथा रसों में मिठास भरती है। परमात्मा ने ही सूर्य की दो प्रकार की किरणें, प्रकाश और ऊष्मा दी हैं। इस कारण हम भी उनका लाभ सबको पहुँचाएँ।)

इस अष्टम् खण्ड में परमात्मा ने प्राणीमात्र के लिए जो कुछ किया है, उसका संक्षिप्त दिग्दर्शन है। और साथ ही अपने पड़ोसियों, ब्राह्मण तथा सजातियों के साथ रहने और उनका सहयोग प्राप्त करने के लिए कहा है।

वेद का कथन आरम्भ हुआ था—मनुष्य को अपने कर्म यज्ञ-रूप अर्थात् सर्वहिताय करने के आदेश से। इन मंत्रों में भी बताया है कि परमात्मा ने सबके समान हित के लिए संसार के पदार्थ बनाए हैं। इस कारण तुम सबके कल्याण के विचार से ही जीवन चलाओ। यही यज्ञ है।

Central Library
167366
Gurukula Kangri (Deemed to be University) Haridwar

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

नवमः खण्डः

अब गृहस्थ के जन-सम्पर्क का विषय आरम्भ होता है। यह भी यज्ञमय होना चाहिए। कहा है—

जनपत्यै त्वा संयोमीदमग्नेरिदमग्नीषोमयोरिषे त्वा घर्मोऽसि विश्वायुरुरुप्रथाऽउरु प्रथस्वोरु। ते यज्ञपतिः प्रथतामग्निष्टे त्वचं मा हिंꣳ सीद्देवस्त्वा सविता श्रपयतु वर्षिष्ठेऽधि नाके॥

—यजुः 1-22

इस मंत्र का देवता है—'यज्ञः'।

मन्त्रार्थ—(जनपत्यै इषे इदम् अग्नेः इदम् अग्नीषोम्योः त्वा सम् यौमि) तुमको (यज्ञ को) इस अग्नि और सोम (जल) से अन्न उत्पन्न करने के लिए युक्त करता हूँ।

(घर्मः असि त्वा उरु-प्रथाः विश्व-आयु उरु प्रथस्व) तुम (यज्ञ) गर्मी (ऊष्मा) हो, तुमको पूर्ण आयु लम्बी करने के लिए और विस्तार देने के लिए (प्रयोग करूँ)।

(ते यज्ञ-पतिः प्रथताम् अग्नि ते त्वचम् मा हिं सीत्) तेरा यज्ञपति (यज्ञ करने वाला) तेरी त्वचा (रक्षा के साधनों) को अग्नि हानि न पहुँचाए।

(त्वा देवः सविता श्रपयतु वर्षिष्ठे अधि नाके) सूर्यदेव तुमको सुखकारक बनाये और उन्नत होने पर स्वर्गलोक में पहुँचाए।

मंत्र में यह कहा है कि यजमान (गृहस्थ) को सामर्थ्यवान् परमात्मा बनाता है। इसलिए वह यज्ञ (लोक-कल्याण का कार्य) को पूर्ण आयु-भर विस्तार दे (वृद्धि दे) और उसको उन्नत करे। अग्नि यजमान की रक्षा करती है। उसे सदा जलाए रखे अर्थात् उसका प्रयोग सदैव कर्मों में करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्यदेव जो आकाश में वृद्धि पा रहा है, वह सब प्राणियों के लिए सुखकारक होवे।

इस मंत्र में विचारणीय बात यह है कि श्रेष्ठ कर्म क्या हैं, जिनको करने और अधिकाधिक व्यवहार में लाने के लिए कहा है? पूर्ण यजुर्वेद का निष्कर्ष यह है कि प्रत्येक कार्य यज्ञरूप में करे। यज्ञ का अर्थ विस्तार से ऊपर बताया जा चुका है।

इसी दिशा में आगे कहा है—

मा भेर्मा संविक्थाऽअतमेरुर्यज्ञोऽतमेरुर्यजमानस्य प्रजा भूयात् त्रिताय त्वा द्विताय त्वैकताय त्वा॥

—यजु:० 1-23

इस मंत्र का देवता है—'अग्निः'।

मन्त्रार्थ—(मा भेः मा सम् विक्थाः अतमेरु यज्ञः) (हे यजमान! यज्ञ करते हुए) भय मत करो और विचलित मत होवो।

(अतमेरूः यजमानस्य प्रजा भूयात्) यजमान की प्रजा स्वावलम्बी हो। (प्रजा का अभिप्राय है सन्तान अथवा कर्मचारी वर्ग।)

(त्वा त्रिताय त्वा द्विताय त्वा एकताय) तुमको (अग्नि को) तीन, दो अथवा एक के लिए (ग्रहण करे।)

मंत्र का अभिप्राय है कि कार्य में आलस्य नहीं करना चाहिए। इस कारण कार्य करते हुए डरना नहीं चाहिए, न ही इसके करने में सुस्ती करनी चाहिए।

यज्ञपति (यजमान) संतान के लिए, तीन अर्थात् बहुत अथवा दो अथवा एक के लिए अवश्य ही तुमको (अग्नि को) ग्रहण करे।

देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णोहस्ता-भ्याम्। आददेऽध्वरकृतं देवेभ्यऽइन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणः सहस्रभृष्टिः शततेजा वायुरसि तिग्मतेजा द्विषतो वधः॥

—यजु: 1-24

इस मंत्र का देवता है—'द्योविद्यतौ' अर्थात् द्यु तथा विद्युत (सूर्य तथा इन्द्र)

मन्त्रार्थ—(त्वा देवस्य सवितुः प्र-सवे) तुमको सूर्यदेव की उत्पत्ति की सामर्थ्य से;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(पूष्णाः अश्विनोः बाहुभ्याम् आ हस्ताभ्याम् ददे) पुष्टिकारक (सूर्य) दोनों बाहों और हाथों से देवे [धन बल]।

(अध्वर-कृतम् देवेभ्यः इन्द्रस्य दक्षिणः बाहुः असि वायुः असि सहस्त्रभृष्टिः शत तेजाः तिग्म-तेजाः द्विषतः वधः) यज्ञ करने वाले विद्वानों के लिए इन्द्र का दाहिना बाहु, जो गति उत्पन्न करने वाली शक्ति है, वह सहस्त्रों सृष्टि के पदार्थों को गतिशील करने वाली है, तीक्ष्ण तेज वाली, द्वेष करने वालों को बाँधने वाली अथवा नष्ट करने वाली है [इसे स्वीकार करता है।]

इस मन्त्र में पूर्व के उद्देश्य को पूर्ण करने के लिए ही कहा है। सूर्य की किरणों और किरणों के हाथों (करने के साधन) बाहों से देव इन्द्र (विद्युतादि शक्ति) को ग्रहण करो। उनसे विद्वानों के लिए यज्ञ करो। इस यज्ञ में सहस्त्रों निर्मित वस्तुएँ और शक्ति के स्त्रोत प्रस्तुत करो।

सूर्यदेव की बाहों और हाथों के विषय में आगे कहा है—

पृथिवी देवयजन्योषध्यास्ते मूलं मा हिꣳसिषं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याꣳ शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥

(यजुः० 1-25)

इस मंत्र का देवता है—'सविता'।

मन्त्रार्थ—(पृथिवी देव-यजनि ते ओषध्याः मूलम् महिꣳसिषम्) पृथिवी देवताओं की यज्ञभूमि है [पृथिवी पर दिव्य गुण वाले पदार्थ उत्पन्न होते हैं।] इस पर उत्पन्न होने वाली औषधियों के मूल को मैं नष्ट न करूँ [जिससे वे निःशेष न हो जाएँ।]

[औषधियों को लेकर] (व्रजम् गो-स्थानम् गच्छ) गाँव को और गौओं के स्थान को चले जाओ।

(ते द्यौः वर्षतु) वहाँ [पृथिवी पर जहाँ से औषधियाँ ले गए हैं,] बादल वर्षा करें।

(परम् अस्याम् पृथिव्याम् देव सवितः) इस महान् पृथिवी पर सूर्यदेव—

(यः अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विषम्ः तम् शतेन पाशैः बधान) जो हमसे द्वेष करते हैं उनको सैंकड़ों बन्धनों से बाँधो;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अतः तम् मा मोक्) और उनको स्वतन्त्र मत करो।

पृथिवी पर बसे गृहस्थ से ऋषि कह रहे हैं—देवगण **[पृथिवी पर दिव्य गुणयुक्त प्राकृतिक शक्तियाँ]** यज्ञ कर रही हैं। वे जल बरसाती हैं, औषधियाँ उत्पन्न करती हैं। अतः उनका मूल नाश न करो।

सूर्यदेव प्रकाश किरणों से, दूषित पदार्थ का नाश करता है। वे दिव्य शक्तियाँ उनको फलने-फूलने न दें जो हमारे साथ द्वेष करती हैं।

अगला मंत्र है—

अपाररुं पृथिव्यै देवयजनाद्वध्यासं व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमास्यां पृथिव्याः शतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥
अररो दिवं मा पप्तो द्रप्सस्ते द्यां मा स्कन् व्रजं गच्छ गोष्ठानं वर्षतु ते द्यौर्बधान देव सवितः परमस्यां पृथिव्याःशतेन पाशैर्योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मस्तमतो मा मौक्॥

(यजुः० 1-26)

इस मन्त्र का देवता भी 'सविता' है।

मन्त्रार्थ—(देव सवितः पृथिव्यै देव-यजनात् अप अररुम् वध्यासम्) हे देव सविता! पृथिवी पर विद्वानों के लिए किए जा रहे यज्ञ से दुष्टों को मार भगाओ।

(ते द्यौः व्रजम् गच्छ गोस्थानम् वर्षतु) [हे सविता देव!] तुम [जनों की] बस्तियों पर जाओ और [अपना प्रकाश] बसाओ।

(देव सवितः परम् अस्याम् पृथिव्यां शतेन पाशैःबधान) हे देव सविता! [सबके उत्पन्न करने वाले परमात्मा] इस महान् पृथिवी पर सैकड़ों पाशों से बाँधो [उनको];

(यः अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विष्मः तम् अतः मा मौक्) जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनसे हम द्वेष करते हैं, उनको यहाँ मत मुक्त [स्वतन्त्र] छोड़ो।

(अररो मा दिवम् पप्तः ते द्याम् द्रप्सः मा स्कन्) दुष्ट ज्ञान को प्राप्त न हों और प्रकाश (ज्ञान) का सार उन्हें न मिले;

(ते द्यौः व्रजम् गच्छ गोस्थानम् वर्षतु) तेरा प्रकाश मनुष्यों की बस्तियों को जाए और (प्रकाश की) 'वर्ष गोष्ठानं' (जहाँ गाय इत्यादि के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

लिए घास-चारा पैदा होता है) पर प्रकाश की वर्षा हो अथवा बादल वहाँ बरसें।

(देव सवितः) परमास्याम् पृथिव्याम् शतेनपाशैः यः अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विष्मः बधान तम् अतः मा मौक्) हे देव सविता! (सबके उत्पन्न करने वाले परमात्मा) इस महान् पृथिवी पर जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनसे हम द्वेष करते हैं, उनको सैकड़ों फाँसों से बाँधो, तथा उनको यहाँ मुक्त (स्वतन्त्र) मत छोड़ो।

इन मंत्रों में बात ध्यान रखने योग्य यह है कि कुछ शब्द बार-बार कहे गये हैं। ये परमात्मा से प्रार्थना के रूप में हैं। इस कारण बार-बार कहने में पुनरुक्ति दोष नहीं क्योंकि प्रार्थना में वास्तव में परमात्मा को करने के लिए कुछ कहना नहीं होता, वरन् स्वयं करने का संकल्प होता है और बार-बार संकल्प स्मरणार्थ ही समझना चाहिए, जिससे मनुष्य इन शब्दों को भलीभाँति हृदय में बैठा ले और इनके अर्थों से परिचित हो तथा उनके विपरीत आचार न करने लगे।

अगला मंत्र है—

गायत्रेण त्वा छन्दसा परिगृह्णामि त्रैष्टुभेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि जागतेन त्वा छन्दसा परिगृह्णामि। सुक्ष्मा चासि शिवा चासि स्योना चासि सुषदा चास्यूर्जस्वती चासि पयस्वती च॥

(यजुः 1-27)

इस मंत्र का देवता है—'पृथिवी'।

स्वामी दयानन्द ने इसका देवता यज्ञ कहा है। यज्ञ भी हो सकता है। इस पर भी हमारा विचार है कि मंत्र का विषय पृथिवी से संबद्ध है।

मन्त्रार्थ—(च सुक्ष्मा च शिवा असि च स्योना सुषदा असि सु-षदा ऊर्जस्वती असि पयस्वती असि) हे पृथिवी! [ऊपर के मन्त्र में पृथिवी की रक्षा के विषय में कहा है और च शब्द उस मंत्र से सम्बन्ध बताने से पृथ्वी को ही सम्बोधित किया गया है।] तू शोभामयी है, कल्याणकारिणी है, मंगल करने वाली है, सुखों का निवास-स्थान है, शक्ति का भण्डार है और रसों को देने वाली है।

(त्वा गायत्रेण छन्दसा त्रैष्टुभेन छन्दसा जगतेन छन्दसा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परिगृह्णामि) तुम [पृथिवी] को गायत्री, त्रिष्टुप और जगति छन्द से स्वीकार करता हूँ [अर्थात् हे पृथिवी! तुम्हारे इन गुणों का लाभ मैं वेदानुसार भोग करता हूँ।]

जिस पृथिवी की रक्षा के लिए ऊपर के मन्त्र (यजु: 1-26) में याचना की गई है, उस पृथिवी की स्तुति कर यह कहा गया है कि इस पृथिवी को यजमान ग्रहण करे, वेद में कहे अनुसार।

अगला मंत्र है—

पुरा क्रूरस्य विसृपो विरप्शिन्नुदादाय पृथिवीं जीवदानुम्। यामैरयँश्चन्द्रमसि स्वधाभिस्तामु धीरासोऽअनुदिश्य यजन्ते। प्रोक्षणीरासादय द्विषतो बधोसि॥

यजु: 1-28

इस मन्त्र का देवता है—'यज्ञ:'। यज्ञ कर्म का सूचक है।

मन्त्रार्थ—(वि-रप्शिन् पुरा क्रूरस्य विसृ-पः उदादाय पृथिवीम् जीवदानुम) हे ऐश्वर्य की इच्छा करने वाले [गृहस्थ] मनुष्य! पहले क्रूर (निर्दयी) को जीवनदान करने वाली भूमि का धीरे-धीरे उद्धार करने के लिए यत्न करो;

(याम् ऐरयन् चन्द्रमसि ताम् स्वधाभिः ऊं धीरासः अनु-दिश्य यजन्ते प्र-उक्षणीः द्विषतः आ सादय बधः असि) जो (पृथिवी) शान्ति सुख से युक्त हो गई है और स्वतंत्र हो गई है, उसको बुद्धिमान् मनुष्यों के अधीन कर यज्ञ में स्थापित कर दो। द्वेष करने वालों का वध कर दो।

सृष्टि के लिए अथवा यज्ञ कर्म के लिए भूमि मुक्त करा उसे बुद्धिमान् मनुष्यों के हाथ में यज्ञरूप प्रयोग करने के लिए कहा है।

मन्त्र में कहा है कि पृथिवी—

(1) निर्दयी मनुष्यों के पास नहीं रहने देनी चाहिए;

(2) मुक्त हुई और शान्ति प्राप्त भूमि का यज्ञ के लिए प्रयोग करना चाहिए। यज्ञरूप प्रयोग में जो कोई बाधक हो, उसका नाश कर देना चाहिए।

अगला मन्त्र इस प्रकार है—

प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽ अरातयः। अनिशितोऽसि सपत्नक्षिद्वाजिन् त्वा वाजेध्यायै

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सम्मार्ज्मि। प्रत्युष्टꣳ रक्षः प्रत्युष्टाऽअरातयो निष्टप्तꣳ रक्षो निष्टप्ताऽअरातयः। अनिशितासि सपत्नक्षिद्वाजिनीं त्वा वाजेध्यायै सम्मार्ज्मि॥

—यजुः 1-29

इस मंत्र का देवता है—'यज्ञः सर्वस्य'।

(प्रति-उष्टम् रक्षः प्रति-उष्टाः अरातयः निष्टप्तम् रक्षः निष्टप्ताः अरातयः) दुष्ट और परद्रव्यापहारी (लेकर न देने वाले) की परीक्षा और निश्चय कर उनको विनष्ट तथा निर्मूल कर दो;

(अनि-शिता असि सपत्न-क्षित् वाजिनीम् त्वा वाज-इध्यायै सम् मार्जिम) तुम तीक्ष्ण नहीं हो; परन्तु शत्रु को नाश करने वाले बलवान् हो; बल से तुम युद्ध करने वाले अथवा शोधन कार्य करने वाले हो।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि यज्ञ दुःख देने वाला आयोजन नहीं है। इस पर भी वह शत्रुओं को बल से युद्ध कर, अभिप्राय यह है कि विरोध करके तथा विरोधियों में संशोधन करके उनको अनुकूल बनाने वाला है।

तीक्ष्ण का अभिप्राय कष्टदायक है।

अगला मंत्र इस प्रकार है—

अदित्यै रास्नासि विष्णोर्वेष्योस्यूर्ज्जे त्वाऽदब्धेन त्वा चक्षुषाव-पश्यामि। अग्नेर्जिह्वासि सुहूर्देवेभ्यो धाम्ने धाम्ने मे भव यजुषे यजुषे॥

—यजुः 1-30

इस मन्त्र का देवता है—'यज्ञः'।

मन्त्रार्थ—(अदित्यै रास्ना असि विष्णोः वेष्यः असि) तू (यज्ञ) अदिति (पृथिवी) का बन्धन है (पृथिवी के लोगों को एक में बाँध रखता है।) तू व्यापक परमात्मा का वेश (स्वरूप) है।

(त्वा ऊर्ज्जे त्वा अदब्धेन चक्षुषा अव पश्यामि) तुम (यज्ञ) को शक्ति के लिए अधिकृत नेत्रों से देखता हूँ।

(अग्नेः जिह्वा असि) तू (यज्ञ) अग्नि की जिह्वा (अग्नि की लपट) है।

(सु-हूः देवेभ्यः मे धाम्ने धाम्ने यजुषे यजुषे भव) तू (यज्ञ) विद्वानों के लिए यजुः के मन्त्रों के अनुसार कहा जाता हुआ, घर-घर में सम्पन्न हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सवितुस्त्वा प्रसवऽउत्पुनाम्यच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः। सवितुर्वः प्रसवऽउत्पुनाम्यश्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः॥ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि धाम नामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि।

—यजुः० 1-31

इस मन्त्र का देवता है—'यज्ञ'।

मन्त्रार्थ—(त्वा सवितुः प्रसवे अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः) तुम (यज्ञ) को सृष्टि उत्पादक परमात्मा की प्रेरणा से न फटे हुए पवित्र ऐसे छाजन, जो सूर्य की तीव्रता को तो रोकें, परन्तु छिद्रों वाले फटे हुए न हों), से सूर्य की किरणों के द्वारा मैं (उत् पुनामि) यहाँ पवित्र करता हूँ;

(वः सवितुः प्र-सवे अच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मि-भिः) तुम (मनुष्यों) को उत्पन्न करने वाले से पवित्र करने वाले (ऐसे छाजन से, जो छाजने वाले हों, सूर्य की रश्मि को उसकी तीव्रता को न आने दें, परन्तु प्रकाश आने दें) सूर्य की किरणों के द्वारा;

(तेजः असिः शुक्रम् असि अमृतम् असि) तू तेज है, तू बल है, तू अमृत है;

(देवानाम् अनाधृष्टम् धाम नाम असि देव-यजनम् असि) विद्वानों का प्रिय आश्रय स्थान हो, तू देवताओं का यज्ञ स्थान हो। किसी से भयभीत न होने वाला हो।

दोनों मंत्रों (यजुः 1-30, 31) का अभिप्राय यह है कि यज्ञ पर ऐसा छाजन तम्बू इत्यादि लगाया जाए और यदि यज्ञ कोई उद्योग इत्यादि हो तो उसके भवन की छत ऐसी बनाई जाए जिससे सूर्य की किरणें आ सकें, परन्तु सूर्य की तीव्रता न आए। सूर्य का प्रकाश आए, परन्तु धूप का तेज और बल न आए। ऐसा यज्ञदेव कहा जाएगा। यज्ञ की रक्षा तो की जाए, परन्तु इसका उद्देश्य बना रहे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद के प्रथम अध्याय का सारांश

यहाँ हम ऊपर कहे गए मंत्रों का सरल भाषा में सार देना चाहते हैं जिससे वेद के इस महत्त्वपूर्ण कथन पर भलीबाँति विचार हो सके।

मनुष्य पृथिवी पर आया है और यह पृथिवी कैसी है, इससे ही वेद-प्रवचन आरम्भ किया गया है।

पृथिवी पर रहते हुए मनुष्य को दो बातों की आवश्यकता अनुभव होती है। एक है पृथिवी पर के पदार्थों का उपभोग और दूसरे उपभोग करने की सामर्थ्य। उपभोग के पदार्थ हैं—जल, वायु, अन्न (गेहूँ, चावल, फल, मूल-कंद इत्यादि) अन्न में खनिज पदार्थ भी समझने चाहिएँ। इन सबको अन्न इस कारण कहते हैं क्योंकि ये पदार्थ हमारे शरीर और शरीर के उपभोग किए जाने वाले पदार्थों के लिए उपादान (Material) प्रस्तुत करते हैं।

अन्न खाने से मांस, मेद, मज्जा, रक्त आदि शरीर के धातु बनते हैं। इनके निर्माण के लिए सबका प्रयोग होता है। इसी प्रकार एक व्यवसाय में पदार्थों के निर्माण में जो कच्चा माल (Raw material) आवश्यक होता है, वह अन्न कहा जाएगा।

ये सब अन्न कहे जाने वाले पदार्थ पृथिवी से ही प्राप्त होते हैं। पृथिवी सूर्य की पुत्री कहाती है। वैसे तो सौर-मंडल के सब नक्षत्र जो सूर्य के चारों ओर घूम रहे हैं, वे सब सूर्य की सन्तान ही हैं। पृथिवी का उल्लेख यहाँ इस कारण किया गया है क्योंकि हम पृथिवी पर रहने वाले मनुष्यों के जीवन के विषय में लिख रहे हैं। इस कारण पृथिवी की बात कही है कि पृथिवी सूर्य की सन्तान है। अतः जो कुछ पदार्थ उपलब्ध हैं, वे सूर्य से ही प्राप्त हुए हैं।

सूर्य के पदार्थों के परिमण्डलों (Atoms) में विघटन (Dis-integration) हो रहा है। इससे जिस शक्ति से एक परिमण्डल संयुक्त है, वह प्रस्फुटित हो रही है। परिमण्डलीय शक्ति (Inter-Atomic Energy) परिमण्डलीय कणों (Atomic particles) के द्वारा पृथिवी की ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धाराओं में आ रही है। यही पृथिवी पर की पूर्ण शक्ति का स्रोत है।

जब से पृथिवी बनी है और सूर्य के चारों ओर घूमने लगी है, तब से ही सूर्य की शक्ति पृथिवी पर आकर वनस्पतियों के रूप में संचय होने लगी है। उस संचित शक्ति का एक रूप भूमि में से निकलने वाला कोयला और मिट्टी का तेल, पेट्रोल इत्यादि पदार्थ हैं। वनों की लकड़ी भी सूर्य की शक्ति का संचित रूप है।

सूर्य पर जो परिमण्डलों में विस्फोट हो रहा है, वह ईश्वरीय शक्ति से ही सम्भव है। परमात्मा का तेज, जिसे वैश्वानर अग्नि कहते हैं, ही यह विस्फोट सूर्य में उत्पन्न कर रहा है।

सूर्य में हो रहे विघटित परिमण्डलीय पृथिवी पर भी कुछ थे। वे अब भी हैं।

ऐसा अनुमान किया जाता है कि पृथिवी पर मानव सृष्टि होने के समय पृथिवी के पदार्थों का विघटन (disintegration) अधिक संख्या में और अधिक मात्रा में होता था। अब ऐटम्ज़ का वह विघटन कम हो गया है। पहले से विघटन होने वाले परिमण्डल शान्त हो गए हैं।

पृथिवी पर के वे सब पदार्थ जो हमारे प्रयोगों में आते हैं और जो हमारे शरीर अथवा कार्यों में उत्पादन प्रस्तुत करते हैं, वे स्थिर (stable) अवस्था में प्राप्त हैं।

मनुष्य के जीवन के लिए एक आवश्यक वस्तु है अन्न। अन्न पृथिवी से मिलता है, परन्तु पृथिवी पर भी वह सूर्य से ही प्राप्त हुआ है।

अन्न जो हम भोजन के लिए प्रयोग करते हैं अर्थात् गेहूँ, चावल, वनस्पतियाँ, फल इत्यादि नित्यप्रति निर्माण हो रहे हैं। वे भी पृथिवी पर उपस्थित पदार्थों से, परन्तु सूर्य के सहाय से बनते हैं।

उदाहरण के रूप में गेहूँ हैं। हम नित्य इसका भोग करते हैं। गेहूँ पृथिवी पर पैदा होता है, परन्तु पृथिवी अकेली इसे निर्माण नहीं कर सकती। इसके निर्माण में सूर्य के सहाय की आवश्यकता रहती है।

सूर्य रश्मियाँ पेड़ों के पत्तों में उपस्थित हरित पर्णों (chlorophyll) पर पड़ती हैं तो वे वायु की ऑक्सीजन, वायु की कार्बन-डाइऑक्साइड और जल से मिलकर स्टार्च मॉलिक्यूल (मरुत) बना देती हैं। ये गेहूँ, चावल, मक्का तथा फलों में और साग-भाजी में भोज्य पदार्थ बन जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस प्रकार परमात्मा की शक्ति से सूर्य के अणुओं में विस्फोट हो रहा है। उसमें जिस शक्ति का स्फुरन हो रहा है, वह शक्ति सूर्य की रश्मियों द्वारा चारों ओर व्योम में फैल रही है। पृथिवी पर भी आती है। यहाँ वह शक्ति वनस्पतियों में हरित पर्ण की सहायता से अन्न में संचय हो जाती है।

प्राणी अन्न खाते हैं और अन्न में संचित शक्ति विमुक्त हो उनमें प्राण के रूप में प्रकट होती है।

मनुष्य में वे प्राण सात प्रकार के हैं। इनसे शरीर के सब कर्म होते हैं। प्राण—ज्ञानेन्द्रियों, कर्मेन्द्रियों तथा शरीर के गतिशील अंगों में प्रयोग होते हैं। मनुष्य के सब कार्य इनके द्वारा ही सम्पन्न होते हैं।

यजुर्वेद मनुष्य के कर्म सम्बन्धी ज्ञान का ग्रंथ है। इसी कारण सबसे प्रथम मंत्र में ही कर्म करने की सामर्थ्य के स्रोत का वर्णन कर दिया है। वहाँ (यजुः 1-1 में) बताया है कि सविता देव अर्थात् सूर्य ऊर्जा और शरीर बनने के लिए उपादान पदार्थ होता है। उससे हममें कर्म करने की सामर्थ्य आ जाती है। वेद मनुष्य को यह कहता है कि उसे इस कर्म करने की सामर्थ्य से भले कार्य करने चाहिएँ। मनुष्य के वे पशु भी, जो न मारे जाने योग्य हैं, बहुत सन्तान वाले हों और मनुष्य के लिए स्थिर रूप से अर्थात् सदा उपयोगी सिद्ध हों। इस प्रकार मनुष्य इस भू पर उन्नति करता हुआ जीवन चलाए।

मंत्र में शब्द यजमान है। यजमान का अर्थ गृहस्थ है। इन्हीं अर्थों में शतपथ ब्राह्मण में भी यह शब्द लिया गया है।

गृहस्थ प्राणी में परमात्मा की कृपा से कर्म करने की शक्ति आती है तो वह कर्म करता है।

उद्देश्य के विचार से कर्म तीन प्रकार के हैं—(1) नित्य कर्म, (2) नैमित्तिक कर्म तथा (3) निष्काम कर्म।

नित्य कर्म वे हैं जिनको शरीर चलाने के लिए नित्य करने की आवश्यकता रहती है। खाना-पीना, सोना, मलमूत्र त्याग करना इत्यादि। ये तो करने ही पड़ते हैं। मनुष्य इनको अनायास बिना विचारे ही करता रहता है।

नैमित्तिक कर्म वे हैं जो उद्देश्य विशेष से किए जाते हैं।

निष्काम कर्मों में भी उद्देश्य तो रहता है, परन्तु वह उद्देश्य किसी स्व-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुख के लिए नहीं होता अर्थात् वे नैमित्तिक कर्म जिनके उद्देश्य अपने में केन्द्रित न हों, निष्काम कर्म कहाते हैं।

जब मनुष्य में शक्ति उत्पन्न हो जाती है तो वह इन तीनों उद्देश्यों की पूर्ति में कर्म करता है। कर्म तो स्व-अभ्युदय के लिए ही होते हैं। यह कहा है कि इन कर्मों से हम अपनी और अपने तीनों प्रकार के उद्देश्यों की पूर्ति कर सकें।

आगे कहा है कि मनुष्य का प्रत्येक कार्य यज्ञरूप ही हो अर्थात् वह लोक-कल्याण के लिए करे। जैसे देवयज्ञ में अन्न, घी, सामग्री, समिधा, जल हैं, वैसे ही प्रत्येक कार्य में होता है। कुछ पदार्थ कार्य में व्यय हो जाते हैं, कुछ धन भी व्यय हो जाता है। वह उन समिधा आदि की भाँति ही है जो देव यज्ञ में जल जाती है।

देवयज्ञ में जो सामग्री इत्यादि अग्नि में डाली जाती है, वह सब व्यय हो जाती है। परन्तु मनुष्य के अन्य कार्यों में जब कुछ व्यय होता है तो कुछ उपज भी होती है।

उदाहरण के रूप में भूमि में बीज डाला जाता है। बीज विनष्ट हो जाता है, परन्तु अंकुर उत्पन्न हो जाता है और उससे पुनः पेड़ तथा बीज बन जाता है। अतः सामान्य कर्म में हवि जो प्रयुक्त होती है, वह उत्पन्न भी करती है। उद्योग धंधों में भी व्यय किए की उपज होती है। उस उपज को यज्ञ की परिभाषा में हवि कहते हैं। व्यापार में उसे लाभ कहते हैं। देवयज्ञ में इसे यज्ञ-शेष कहते हैं।

जब जीवन के कार्य सर्वहिताय किए जाएँ, (सबके हित के साथ अपना भी हित सिद्ध हो जाता है) तो वह कार्य यज्ञ-रूप कहाता है।

अतः गृहस्थ प्राणी जीवन-कार्य भी (व्यवसाय इत्यादि भी) यज्ञ रूप करे। व्यवसाय में मालिक का वेतन, पूँजी का ब्याज, कारोबार में टूट-फूट, कर्मचारियों का वेतन, सरकार का कर देकर जो बचे, वह यज्ञ की हवि की भाँति बाँटना चाहिए। मुख्य भाग विद्वानों के लिए होता है।

अतः यजुर्वेद में गृहस्थ के लिए यज्ञ की व्याख्या की है अर्थात् जीवनचर्या का वर्णन किया है।

कहा है कि मनुष्य अपनी प्राण-शक्ति की शपथ लेकर जीवन आरम्भ करे और जीवन चलाए। ऐसे चलाए कि (कोई अनृत) प्राकृतिक नियमों के

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

विपरीत कार्य न हो और सदा सत्य की ओर अर्थात् प्राकृतिक नियमों के पालन के लिए तत्पर रहे। ऐसा व्रत लेकर कार्य आरम्भ करे।

जीवन-कार्य में पहला कार्य यह बताया है कि मनुष्य अपने सहयोगी ढूँढ़े। दो प्रकार के लोगों को अपने कार्यों से दूर रखे। एक दुष्ट स्वभाव के लोगों को और दूसरे लेकर न देने वालों को।

इनकी व्याख्या हमने मंत्रों के भाष्य में सविस्तार की है। यहाँ इतना ही बता देना पर्याप्त है कि दुष्ट वे हैं जो भले कार्यों में स्वार्थ के लिए बाधाएँ खड़ी करते हैं और अरातय वे होते हैं जो लेकर न दें अर्थात् वेतन तो लें, परन्तु काम न करें अथवा कम करें। अथवा कर्मचारियों से परिश्रम तो करवायें, मजदूरी न दें अथवा कम दें। इसी प्रकार यज्ञ में लेकर न देने वाला न हो। ऐसे लोगों से यज्ञ करने वाला बच कर रहे।

वेद के अनुसार यज्ञ सैकड़ों-सहस्रों प्रकार के होते हैं। इसका अभिप्राय यह है कि मनुष्य जीवन के कार्य अनेक हैं और वे सब यज्ञरूप में लिए जाएँ।

कोई भी कार्य यज्ञ-रूप किया जा सकता है यदि उस कार्य से होने वाले लाभ का बँटवारा ऐसे किया जाए जैसे वेद (यजुः० 21-43) में कहा है। अर्थात् हवि को दोनों पक्ष सम्मुख रखकर उसका मुख्य भाग परस्पर बाँट लें और गौण भाग दान-दक्षिणा में दें। यह यज्ञ कार्य का बँटवारा है अर्थात् हवि का वितरण।

इसके उपरान्त यज्ञ करने वाला गृहस्थ में प्रवेश करते समय यज्ञ में (गृहस्थ) दो प्रकार की अग्नियाँ जलाए। एक आह्वनी और दूसरी गार्हपत्य। अभिप्राय यह कि प्रत्येक गृहस्थ का यह कर्त्तव्य है कि वह अपने कर्मफल को दो भागों में बाँट दें। फल का एक भाग लोक-कल्याण के लिए व्यय करे। जब ऐसा करेगा तो उसका प्रत्येक कार्य यज्ञ-रूप ही माना जाएगा।

अपनी आय का कौन-सा भाग अपने गृहस्थी जीवन के लिए व्यय करे और कौन-सा भाग लोक-कल्याण में करे, यह नहीं बताया। यह बँटवारा तो होना चाहिए, परन्तु किस अनुपात में, यह सिद्धान्त का प्रश्न नहीं है। यह व्यर्वहार का विषय है। इसका अभिप्राय है कि यह व्यक्ति-व्यक्ति की अपनी परिस्थिति पर निर्भर करता है।

वेद में पूर्ण कथन का सिद्धान्त रूप में वर्णन किया गया है। सिद्धान्त

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यह है कि गृहस्थ को चाहिए कि अपनी आय को सदा दो भागों में बाँटता रहे। एक गृहस्थ-पालन के लिए और दूसरा लोक-कल्याण के लिए।

हमने दुष्ट की व्याख्या मंत्र में की है। 'अरातयः' के अर्थ भी बताए हैं—लेकर न देना। अरा—नहीं देता। जो लेता ही है, देता नहीं। चोर, लोभी, कंजूस एवं बेईमान अरातय हो सकते हैं। मनुष्य प्रकृति से लाभ के पदार्थ नित्य प्रति प्राप्त करता रहता है। इस प्राप्ति का प्रतिकार जो नहीं देता, वह भी 'अरातय' है।

इस प्रकार के लोगों को अपने सम्मुख से निस्तेज कर अर्थात् दूर हटाकर गृहस्थ अपना कार्य आरम्भ करे।

एक मनुष्य परमात्मा की कृपा से ही ऐसा कर सकता है। बल, बुद्धि ईश्वर की दी हुई है। इस कारण परमात्मा से प्रार्थना की गई है कि वह दुष्टों और अरातय को नाश करने में अर्थात् उनको अपने से दूर रखने में सहायता करे। परमात्मा सबके साथ सरलता का व्यवहार करता है। इस कारण हमको भी वैसा ही होकर परमात्मा का सहाय प्राप्त करना चाहिए।

यजमान प्राणी की रक्षा के लिए अर्थात् अपनी रक्षा के लिए अथवा प्राणी के पास (अपने पास) जो कुछ धन-अन्नादि है, उसकी रक्षा के लिए जिससे उसे कोई दुष्ट व्यक्ति अथवा लेकर न देने वाला उठाकर न ले जाए, अपना एक घर बनाए। इस घर को इस कारण बनाए कि यजमान के पास जो कुछ है उसकी रक्षा की जा सके। रक्षा इस कारण आवश्यक है क्योंकि उसको पुनः यज्ञार्थ प्रयोग करना है।

घर खुला, खिड़कियों तथा द्वारों वाला हो। द्वार दृढ़ हों। वे हवा और प्रकाश को मकान में आने से न रोकें, परन्तु मजबूत हों जिससे कोई दुष्ट अथवा उठाकर ले जाने वाला न आ सके।

उस गृह में, कहा है कि द्वार तथा खिड़कियाँ हों, जिनसे परमात्मा की कृपा से सूर्य द्वारा दिया जाने वाला प्रकाश और ऊष्मा आ सकें। सूर्य को पूषणाः कहा है। यह इस कारण कि सूर्य पृथिवी पर मनुष्य को पुष्ट करने वाला है। वह अपनी दोनों बाहों और हाथों से इन द्वारों और खिड़कियों में से आए और हमें पुष्ट करे।

आगे कहा है कि गृहस्थ इस मकान में इन्द्र [विद्युत] से सहायता ले। इन्द्र का अर्थ है वह शक्ति जो परमाणु की साम्यावस्था भंग होने पर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

प्रस्फुटित होती है। यह शक्ति आप: के रूपों में प्रस्तुत होती है। आप: तीन प्रकार के होते हैं। तैजस्, वैकारिक और भूतादि। भूतादि शान्त तम-रूप होते हैं। ऋण विद्युत प्राय: इन्द्र के नाम से स्मरण की जाती है। धन-विद्युत वृत्र के नाम से। तैजस् अर्थात् इन्द्र धन (वैकारिक वृत्र) को पराजित करता है। इस कारण, वेदमंत्र में कहा है कि इन्द्र की सहायता से वृत्र का नाश करते हुए अपने कार्य में वृद्धि करे।

अपने उद्योग धंधों में इस इन्द्र की शक्ति से वृत्र को पराजित कर उद्योग में उसकी सहायता लेने की बात कही है। इसका अर्थ यह है कि विद्युत को धारा के रूप में बहाते हुए कार्य में उसकी सहायता ले। इस प्रकार अपने माल को शुद्ध करे। अर्थात् कच्चे माल से शुद्ध निर्मित किया हुआ माल तैयार करे।

आगे कहा है कि इस मकान में इन्द्र अर्थात् विद्युत को धारा रूप में प्रवाहित करने का प्रबन्ध करे। यह धन-विद्युत (वृत्र) को पराजित कर ही हो सकता है। इस कारण ऐसा प्रबन्ध करे कि इन्द्र [विद्युत] की धारा चल सके और शान्त हो सके। इसका अभिप्राय यह है कि विद्युत की धारा का प्रयोग अथवा यदि प्रयोग न करना हो तो उसे बन्द अपनी इच्छानुसार कर सके।

मकान बन गया। गृहस्थ का निवास-स्थान अथवा उद्योग व्यवसाय इत्यादि का स्थान बन जाने पर उसमें निरन्तर दिन-रात कार्य होते रहना चाहिए। इस प्रकार संघर्ष करते हुए वर्ष-भर कार्य करे। वर्ष के उपरान्त देखे कि क्या किया है अर्थात् क्या लाभ-हानि हुई है। वर्ष-भर शक्ति और पुष्टिकारक सूर्य गृहस्थ के कार्यों में बाहों और हाथों से सहायता करे।

इन मंत्रों में बार-बार कहा है कि गृहस्थ अन्न और शक्ति की रक्षा करे और वे उसकी सहायता करें।

गृहस्थ जब एक वर्ष तक सफलतापूर्वक कार्य कर ले तो वह 'प्रगल्भ कुशल गृहस्थ' समझा जाता है। उसे कहा है कि अब वह निर्भय होकर कार्य करे। जो अधिक पक्व हो गया है, उसे और मत पका। वह जो निरर्थक हो गया है; उसे पृथक् कर दे और ताजे कच्चे माल का प्रयोग करे। अब वह देवयज्ञ को करे।

देवयज्ञ का अभिप्राय है कि उन देवताओं को जो यजमान के कार्य से

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूषित हो रहे हैं (अर्थात् वायु, जल इत्यादि), उनको शुद्ध करे। कैसे करे? यह यजुर्वेद में नहीं बताया। यह अथर्ववेद का विषय है। यहाँ सिद्धान्त रूप में बात कह दी है कि जीवन [घरेलू और औद्योगिक कार्यों को चलाते हुए जलवायु तथा भूमि गंदी हो जाएगी। उसको पवित्र करे।

खेती-बाड़ी में भी जब फसल हो चुके तो भूमि का सुधार खाद इत्यादि तथा जल-सिंचन से किया जाता है। कारखाने में भी वायु और जल अशुद्ध होते हैं जिसे आजकल की परिभाषा में pollution कहते हैं। उनको शुद्ध करना देवयज्ञ ही है।

सामान्य घर-गृहस्थी के कार्यों में जलवायु इत्यादि की शुद्धि हवन करने से की जाती है। जहाँ बड़े-बड़े कारखाने लगे हों, वहाँ ये छोटे-मोटे हवन कुछ लाभ नहीं कर सकते। वहाँ विशेष आयोजन करने पड़ते हैं। वे आयोजन यहाँ नहीं बताए। यह व्याख्या की बात है। यहाँ सिद्धा्त रूप में कह दिया है कि जीवन में जो गंदगी फैली है, उसे देवयज्ञ से शुद्ध करे।

प्रथम अध्याय में एक शब्द 'भ्रातृव्य' का प्रयोग हुआ है। इसका अर्थ हमने शत्रु किया है। इसके शाब्दिक अर्थ हैं 'शरीक'। समान कार्य करने वाले, प्रतिस्पर्धा करते हुए द्वेष करने वाले। इनको दुष्टों में नहीं गिनाया। इनको प्रतिस्पर्धा करते हुए द्वेषभाव रखने वाला कहा है।

जब व्यवसाय चल पड़े तो क्षत्रिय और ब्राह्मणों की तथा सर्वसाधारण की सहायता करे। समाज में जो विद्वान् हैं और जो समाज की रक्षा का कार्य करते हैं, उनकी पालना का भार प्रगल्भ गृहस्थ पर हो जाता है। यह पालना आजकल के युग में राज्य द्वारा होती है। जहाँ तक क्षत्रिय बल [सैन्य बल] का सम्बन्ध है, वह प्रबन्ध राज्य द्वारा तो ठीक ही प्रतीत होता है, परन्तु ब्राह्मण वर्ग की पालना राज्य द्वारा अशुद्ध है। इसके लिए एक गृहस्थ स्वयं कार्य करे अथवा सरकार से स्वतंत्र समितियाँ बनाकर करे। जब व्यक्तिगत पालना होगी तो वे ब्राह्मण पुरोहित हो जाएँगे, अन्यथा विद्वान् उपाध्याय, आचार्य इत्यादि धार्मिक एवं शैक्षणिक संस्थाओं से पालन किए जाएँगे।

गृहस्थ को अपने व्यवसाय में अथवा अपने घर गृहस्थी के कार्यों में विद्वानों और प्राण विद्या के जानने वालों से सहायता लेते रहनी चाहिए।

वेद कहता है कि यज्ञरूप किया हुआ कार्य सबकी ऐसे ही रक्षा करता है जैसे गृहस्थ का मकान घर के प्राणियों की और आस-पास बसे लोगों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की रक्षा करता है।

वेद की यह प्रेरणा है कि सूर्य से आ रही शक्ति का भरपूर प्रयोग किया जाए और गृहस्थ अपने सम्पूर्ण कार्यों को यज्ञरूप करे।

परमात्मा की कृपा से अन्न तथा ऊर्जा उसे मिली है। उसका उन पदार्थों पर अपना परिश्रम ही व्यय होता है जिससे उसके सब उद्योग धन्धे चलते हैं।

गृहस्थ का अपना परिश्रम भी तो परमात्मा द्वारा दिया हुआ है। परिश्रम शक्ति का रूप ही है। शक्ति सूर्य द्वारा परमात्मा की कृपा से प्राप्त होती है। अतः मनुष्य को चाहिए कि अपने परिश्रम का पूर्ण फल यज्ञरूप वितरित करे। उसमें से केवल उतना ही अपने प्रयोग में लाये जितना उसे अपने को चालू रखने के लिए आवश्यक है।

एक मंत्र (यजुः 1-19) में कहा है कि एक गृहस्थ का मकान पृथिवी का त्वक् है। त्वक् शरीर की रक्षा करती है। मनुष्य की त्वचा तो इतनी कोमल होती है कि एक सामान्य सूई से भी शरीर की रक्षा नहीं कर सकती है। इस पर भी यह शरीर के आभ्यन्तरिक अंगों की रक्षा करती है। इसके दो कार्य तो अत्यन्त उपकारी हैं। एक यह कि जलवायु, धूरि तथा कीटाणु इत्यादि को यह शरीर के भीतर जाने से रोकती है। शरीर में वायु नासिका के मार्ग से ही भीतर जाती है और मनुष्य की नाक में ऐसा प्रबन्ध बना हुआ है कि दूषित वायु की शुद्धि सामान्य रूप से वहाँ हो जाती है। मोटी धूरि नाक में रह जाती है। यदि अनिच्छित वायु इसमें मिली हो तो उसकी गन्ध से नाक मनुष्य को सावधान कर देता है और मनुष्य अपना नाक बन्द कर लेता है।

त्वचा में पसीना लाने की ग्रन्थियाँ होती हैं। वे शरीर के तापक्रम को अनुकूल रखने में सहायक होती हैं।

इन दो मुख्य कार्यों के अतिरिक्त भी त्वचा कई प्रकार से दूषित कीटाणुओं को भीतर जाने से रोकती है।

अतः त्वचा को शरीर की रक्षा करने वाला माना है और गृहस्थ को कहा है कि वह भूमि की त्वचा बन जाए। अपने मकान के आस-पास की भूमि की अथवा भूमि पर बसे लोगों की, त्वचा की भाँति रक्षा करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीय अध्याय

प्रथमः खण्डः

कृष्णोऽस्याखरेष्ठोऽग्नये त्वा जुष्टं प्रोक्षामि वेदरसि बर्हिषे त्वा। जुष्टां प्रोक्षामि बर्हिरसि स्रुग्भ्यस्त्वा जुष्टं प्रोक्षामि॥

यजुः 2-1

इस मंत्र का देवता है 'यज्ञः'।

मन्त्रार्थ—(**कृष्णः असि अग्नये आखेरष्ठः त्वा जुष्टम् प्र उक्षामि**) तू कृष्ण है। अग्नि के लिए खोदे गये स्थान [तैयार किए गए स्थान] में तुमको जुष्ट [प्रिय सेवा के लिए संयुक्त] करता हूँ।

कई भाष्यकार कृष्ण का अर्थ काला हिरण अथवा चमड़ा करते हैं। यह ठीक प्रतीत नहीं होता। कृष्ण का अर्थ काला अर्थात् अन्धकारमय है। यज्ञ, उद्योग धंधा आरम्भ करते समय अन्धकारयुक्त होता है। यह कहा नहीं जा सकता कि वह सफल होगा अथवा नहीं। इस कारण वह आरम्भ करते समय कृष्ण कहा जाता है।

[**आखिरेष्ठः** का अर्थ है—उखाड़ा हुआ अथवा खोदा गया। उद्योग के लिए खान अथवा ऊर्जा निर्माण आदि के लिए स्थान खोदकर बनाया जाता है।]

[**जुष्टम्** का अर्थ है—प्रिय, सेवन योग्य। इसका अभिप्राय है कि अनुकूल सेवा के लिए संयुक्त किया गया।]

(**वेदिः असि त्वा बर्हिषे जुष्टाम् प्र उक्षामि**) यज्ञ स्थान [अथवा स्थान तू है। तुमको अन्तरिक्ष में अनुकूल सेवन के लिए ले जाता हूँ।] उस खोदे हुए स्थान पर ऊँचे भवन बना उसमें कार्य आरम्भ करने की योजना है। तुम्हें अभिषिक्त करता हूँ [आरम्भ करता हूँ।]

(**बर्हिः असि स्रुक्-भ्यः त्वा जुष्टम् प्र उक्षामि**) अन्तरिक्ष [उच्च

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदर्श वाला] तू है। प्राणियों की अनुकूल सेवा के लिए उसको नियुक्त करता हूँ।

वेदी वह स्थान है, जहाँ यज्ञ किया जाने वाला हो। उद्योग के संदर्भ में वेदी वह स्थान होगा जहाँ उद्योग स्थापित करना हो। नींव खोदने के लिए 'आखरेष्ठः' शब्द प्रयोग किया गया है।

भवन ऊँचा उठा तो कह दिया कि अन्तरिक्ष में पहुँच गया।

अगला मंत्र है—

अदित्यै व्युन्दनमसि विष्णो स्तुपोऽस्यूर्णम्रदसं त्वा स्तृणामि स्वासस्थां। देवेभ्यो भुवपतये स्वाहा भुवनपतये स्वाहा भूतानां पतये स्वाहा॥

—यजुः 2-2

इस मंत्र का देवता भी 'यज्ञः' है।

मंत्रार्थ—(**अदित्यै वि-उन्दनम् असि विष्णोः स्तुपः असि**) पृथिवी का सिंचन करने वाला है। [यज्ञ पृथिवी का सिंचन करता है अथवा कृषि करता है] यज्ञ का ध्वज परमात्मा है।

(**त्वा ऊर्ण-म्रदसम् स्तृणामि सु-आस्थाम् देवेभ्यः**) तू ऊन (wool) की भाँति मुलायम है, विद्वानों के सुख से बैठने के लिए छाजन से ढँपता है।

उद्योग अभी प्रारम्भिक अवस्था में होने से कोमल अर्थात् दुर्बल है। इस कारण विद्वानों के लिए छाजन लगाता हूँ। सुरक्षा का प्रबन्ध करता हूँ।

भुव-पतये स्वाहा भुवन-पतये स्वाहा भूयानाम् पतये स्वाहा) इस होने वाले कार्य के स्वामी का कल्याण हो। प्राणियों के स्वामी का कल्याण हो।

[इस मंत्र में यज्ञ की कुछ विशेषताएँ बतायी हैं। एक, भूमिपति भूमि पर हल चलाता है तो यज्ञ करता है, खेतों को जल देता है तो यज्ञ करता है। अन्न लाकर छाजन के नीचे रक्षा के लिए रखता है तो यज्ञ करता है, विद्वानों के लिए लोकपति अर्थात् राजा, (**भुवपतये-भुवनपतये**) भुवनों के स्वामी तथा संसार के स्वामी के लिए और जन-जन के कल्याण के लिए हो।

इस मंत्र में आरम्भ हो रहे उद्योग के लिए शुभ कामना की गई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

गन्धर्वस्त्वा विश्वावसुः परिदधातु विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः। इन्द्रस्य बाहुरसि दक्षिणो विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिड ऽईडितः। मित्रावरुणौ त्वोत्तरतः परिधत्तन्ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्यारिष्ट्यै यजमानस्य परिधिरस्यग्निरिडऽईडितः॥

—यजुः 2-3

इस मंत्र का देवता है—(सर्वस्य) अग्नि।

मन्त्रार्थ—(त्वा गन्धर्वः विश्व-वसुः परिदधातु विश्वस्य अरिष्ट्यै यजमानस्य परि-धिः असि अग्निः इडः ईडितः) तुम वेद के कहने वाले हो, सम्पूर्ण को बसाने वाले हो। सम्पूर्ण का कल्याण करने वाले हो, यजमान की परिधि [सामर्थ्य] हो। अग्नि ही स्तुति योग्य है। अग्नि है शक्ति (energy)।

(इन्द्रस्य दक्षिणः बाहुः असि विश्वस्य अरिष्ट्यै यजमानस्य परि-धिः असि अग्निः इडः ईडितः) इन्द्र का दाहिना बाहु [बल] सबके कल्याण के लिए यजमान की सामर्थ्य है। अतः यज्ञ की स्तुति योग्य है।

(मित्रावरुणौ त्वा उत्तरतः परि धत्तम्) मित्र और वरुण तुमको उत्तर (बाईं) ओर धारण करें।

(ध्रुवेण धर्मणा विश्वस्य अरिष्ट्यै यजमानस्य परि-धिः असि अग्निः इडः ईडितः) अपने धर्म से स्थित कल्याण के लिए मान की सामर्थ्य तुम हो। अग्नि की स्तुति हो। इस कारण यज्ञ की स्तुति हो।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि यज्ञ यदि ठीक ढंग से किया जाए अर्थात् उद्योग इत्यादि यदि सर्वहिताय किये जाएँ तो यह परमात्मा का ही कार्य हो जाता है।

वेद का उच्चारण करने वाला, सबको बसाने वाला, सबके सुख का दाता परमात्मा यजमान [गृहस्थ] की सामर्थ्य की सीमा है; उसमें की अग्नि की स्तुति करने योग्य है। इन्द्र उसकी दाहिनी बाहु है और मित्र, वरुण उसके बाईं ओर बल देने वाले हैं।

इन्द्र से अभिप्राय सूर्य है और मित्र तथा वरुण दो प्रकार के आपाः हैं। मित्र वह शक्ति है जो हम घरों में विद्युत के रूप में प्रयोग करते हैं और वरुण मनुष्य शरीर में इन्द्रियों के रूप में प्रयोग होती है। ये अग्नियाँ (ऊर्जा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

के रूप) स्तुति के योग्य हैं। अर्थात् जानने और चिन्तन के योग्य हैं।

अगला मंत्र है—

वीति होत्रन्त्वा कवे द्युमन्तः समिधीमहि।
अग्ने बृहन्तमध्वरे॥

—यजु: 2-4

इस मंत्र का देवता है—'अग्निः'।

मन्त्रार्थ—(कवे त्वा वीति-होत्रम् द्यु-मन्तम् सम् इधीमहि) हे महान् विद्वान् परमात्मा! यज्ञ की इच्छा वाले प्रकाशवान्, महान् यज्ञ में तुम अच्छी प्रकार [अग्नि को] प्रज्वलित करो।

(अग्ने बृहन्तम् अध्वरे) अग्नि को महान् यज्ञ में प्रयोग करो [उद्योग में शक्ति का प्रयोग होता है]।

इस दूसरे अध्याय में पहले तो यह बताया है कि यज्ञकर्म के लिए (अभिप्राय यह कि व्यवसाय अथवा उद्योग अथवा खेतीबाड़ी के लिए) भूमि को खोदकर तैयार करे। उस पर भवन बनाए। (खेतीबाड़ी के संदर्भ में) भूमि तैयार करे और हल आदि चलाए।

आगे कहा है कि वह तैयार की हुई भूमि अथवा भवन यज्ञ ही हैं। व्यवसाय में सर्वव्यापक 'परमात्मा' का ध्यान करो। जैसे ध्वज संकेत देता है कि वहाँ क्या कार्य हो रहा है, इसी प्रकार गृहस्थ को अपना व्यवसाय यज्ञरूप करने की घोषणा करनी चाहिए। उस व्यवसाय में कार्य लोककल्याण तथा सुख देने वाला होना चाहिए। वहाँ दिव्य गुणयुक्त शक्तियों के लिए, परमात्मा के लिए, देश के राज्य के लिए और सब प्राणियों के लिए कल्याण की घोषणा हो।

तदनन्तर कहा है कि विश्व को बसाने वाला, वेद का उच्चारण करने वाला परमात्मा, सबके सुख के लिए यजमान [गृहस्थ] को सामर्थ्य दे। उसकी सामर्थ्य दे। उसकी सामर्थ्य की सीमा अग्निस्वरूप परमात्मा सूर्य, मित्र और वरुण निश्चय करें अर्थात् दें। परमात्मा सब शक्तियों का मूल स्रोत है। इन्द्र, सूर्य और मित्र तथा वरुण विद्युत के रूप हैं। इन सबके सहाय से गृहस्थ अपना कार्य आरम्भ करे। इस व्याख्या में किए मंत्र में कहा है कि यज्ञ में [व्यवसाय अथवा उद्योग में] परमात्मा अग्नि प्रज्वलित करे अर्थात् उसमें सामर्थ्य निर्माण करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

समिदसि सूर्य्यस्त्वा पुरस्तात् पातु कस्याश्चिदभिशस्त्यै। सवितुर्बाहु स्थऽऊर्णम्रदसंत्वा स्तृणामि स्वासस्थं देवेभ्यऽआ त्वा वसवो रुद्राऽआदित्याः सदन्तु।

—यजुः 2-5

इस मंत्र का देवता है—'यज्ञः'।

मन्त्रार्थ—(सूर्य्यः पुरस्तात् असि पातु त्वा सम्-इत्) सूर्य सामने से तुम्हारी रक्षा करे। तुम समिधा [उद्योग में प्रयोग होने वाली सामग्री] हो।

(कस्याः चित् अभिशस्त्यै) और [समिधाओं] पर किसका अधिकार है? [उद्योग धंधों में प्रयोग होने वाला माल—Raw material—परमात्मा ही देता है।]

(सवितुः बाहू स्थः उर्ण-म्रदसम् त्वा स्तृणामि) सूर्य की दोनों बाहों में स्थित उर्ण (wool) की भाँति कोमलता से ढाँपकर तुम्हारी रक्षा करता है।

(सु-आसस्थम् देवेभ्य) विद्वानों के सुखपूर्वक ठहरने के लिए तू [यह स्थान] है।

(त्वा आ वसवः रुद्राः आदित्याः सदन्तु) वसु, रुद्र और आदित्य आकर रहें।

[वसु, रुद्र और आदित्य प्रजापति, परमात्मा की इकतीस शक्तियाँ हैं। शतपथ ब्राह्मण 4-5-7]

[वसु 8 हैं, रुद्र 11 हैं और आदित्य 12 हैं। ये प्रजापति की 'व्याश्रुतियाँ हैं। ये जगत् के निर्माण, पालन और हनन करने वाली शक्तियाँ हैं।]

[यज्ञ की रक्षा के लिए इन सब शक्तियों का आह्वान किया गया है।]

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

द्वितीयः खण्डः

घृताच्यसि जुहूर्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियः सदऽआसीद घृताच्य-स्युपभृन्नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियम् सदऽआसीद घृताच्यसि ध्रुवा नाम्ना सेदं प्रियेण धाम्ना प्रियम् सदऽआसीद। प्रियेण धाम्ना प्रियम् सदऽआसीद। ध्रुवाऽअसदन्नृतस्य योनौ ता विष्णो पाहि पाहि यज्ञं पाहि यज्ञपतिं पाहि मा यज्ञन्यम्॥

—यजुः० 2-6

इस मन्त्र का देवता है—'विष्णुः'।

मन्त्रार्थ—(जुहूः नाम्ना घृताची असि) जुहूः तुम घी वाली हो [जुहूः पात्र है जिससे घी की आहुति दी जाती है—लकड़ी की कलुछी];

(सा प्रियेण धाम्ना प्रियम् आसीद् इदम् सदः) वह [पात्र] प्रिय धाम के साथ [यह कहा जाता है कि देवताओं को घी प्रिय है, इस कारण वह पात्र घी के साथ] इस स्थान पर बैठे;

(उप-भृत् नाम्ना घृताची असि सा प्रियेण धाम्ना प्रियम् आसीद इदम् सदः) उप-भृत नाम वाला घी का पात्र है। वह प्रिय के स्थान के साथ [घी के साथ] इस स्थान पर बैठे;

(ध्रुवा नाम्ना घृताची आ सीद प्रियेण धाम्ना प्रियम् इदम् सदः) ध्रुव नाम वाला घी का पात्र तू है। प्रिय के स्थान के साथ [घी के साथ] इस स्थान पर आ बैठ;

(प्रियेण धाम्ना प्रियम् आ सीद ध्रुवा असदन) प्रिय का धाम के साथ [घी के साथ ध्रुव हो जावो, स्थिर रहो, समाप्त न होवो];

(ऋतस्य योनौ) यज्ञ की योनि [उद्गम स्थान] में;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(विष्णो पाहि पाहि यज्ञम् पाहि यज्ञ-पतिम् पाहि माम् यज्ञन्यम्) हे व्यापक परमात्मन्! इन सब स्थानों की रक्षा करो, यज्ञ की रक्षा करो, यजमान की रक्षा करो, मेरी [यज्ञ कराने वाले ऋत्विक् और यज्ञ में दूसरे सहयोगियों की] रक्षा करो।

प्रत्येक उद्योग अथवा व्यवसाय में, प्रयुक्त होने वाले पदार्थों को रखने के तीन स्थान होते हैं। एक गोदाम, जहाँ पदार्थ सदैव रहें, अर्थात् वहाँ समाप्त न हों। दो अन्य स्थान हैं। एक तो गोदाम से कारखाने अथवा व्यवसाय स्थल पर लाने वाले पात्र और तीसरा स्थान वह पात्र है जिसमें से ले-लेकर पदार्थ उद्योग में प्रयुक्त होते हैं अथवा व्यवसाय में ग्राहकों को दिये जाते हैं।

जिस प्रकार हवन यज्ञ में घी का प्रयोग होता है उसी प्रकार उद्योग में कच्चा माल (raw material) और व्यवसाय में बिकने वाले पदार्थ प्रयुक्त होते हैं।

इन सब स्थानों की परमात्मा रक्षा करे।

अगला मंत्र है—

अग्ने वाजजिद् वाजं त्वा सरिष्यन्तं वाजजितꣳ सम्मार्ज्मि नमो देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः सुयमे मे भूयास्तम्॥

—यजु: 2-7

इस मंत्र का देवता है—'अग्निः'।

मन्त्रार्थ—(अग्ने वा-जित्) हे अग्ने! तू बल को जीतने वाला है;

(वाजम् त्वा सरिष्यन्तम्) बल की ओर सरकते [चलते] हुए तुम को;

(वाज-जितम् सम मार्ज्मि) बल के जीतने वाले को शुद्ध करता है;

(नमः देवेभ्यः स्वधा पितृभ्यः मे सु-यमे भूयास्तम्) विद्वानों के लिए तुमको नमस्कार करता हूँ। पितरों [बड़ों] के लिए अन्न की इच्छा करता हूँ। ये मेरे नियन्त्रण में होवें।

इस मन्त्र में यज्ञ के लिए अग्नि [ऊर्जा] की स्तुति [उसके गुण, कर्म, स्वभाव का चिन्तन] की गई है। अग्नि! तू बल है; बल को जीतने वाला है। तू वस्तुओं को गति देने में सामर्थ्यवान् है। तुमको मैं शुद्ध करके अर्थात् भली प्रकार नियंत्रित रूप में करके तुम्हारा प्रयोग करूँ। मैं ऊर्जा के विद्वानों

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को नमस्कार करता हूँ, पितरों के स्वावलम्बी होने की याचना करता हूँ। ये सब मेरे नियंत्रण में रहें। पितरों के स्वधा होने की याचना की गई है। अर्थात् परिवार में जो बड़े लोग (elders) हैं, उनको अपने निर्वाह के योग्य रखूँ।

अगला मंत्र है—

अस्कन्नमद्य देवेभ्य आज्य संभ्रियासमंघ्रिणा विष्णो मा त्वावक्रमिषं वसुमतीमग्ने तेच्छायामुपस्थेषं विष्णो स्थानमसीतऽइन्द्रो वीर्य्यमकृणोदूर्ध्वोऽध्वरऽआस्थात्॥

—यजुः० 2-8

इस मन्त्र का देवता है—'विष्णुः' (सर्वव्यापक परमात्मा)।

मन्त्रार्थ—(अद्य अंघ्रिणा देवेभ्यः अस्कन्नम् आज्यम् सम् भ्रियासम्) आज अपने गमन वाले देवों [प्राणों] के लिए स्थिर रहने वाला बल [अथवा अन्न, धन, सामर्थ्य] संग्रह करूँ;

(विष्णो मा त्वा अव क्रमिषम्) हे परमात्मन्! तुम्हारा [तुम्हारे विधि- विधान का] मैं उल्लंघन न करूँ;

(अग्ने ते वसु-मतीम् छायाम् उपस्थेषम्) हे अग्ने! तेरे बसाने योग्य आश्रय को प्राप्त होऊँ;

(विष्णोः स्थानम् असि इतः इन्द्र वीर्य्यम् अकृणोत् ऊर्ध्वः अध्वरः आ आस्थात्) यज्ञ का स्थान तू [परमात्मा] है। इन्द्र बल देता है। अध्वर यज्ञ स्थिर करता है।

इन्द्र से अभिप्राय है विद्युतादि शक्ति।

किसी उद्योगादि को चलाने वाली शक्ति (ऊर्जा) है। इस कारण उसे परमात्मा का स्थान कहा है। साथ ही यह कहा है कि उद्योगपति परमात्मा के नियमों का उल्लंघन न करे। परमात्मा के नियम क्या हैं? यह व्याख्या का प्रश्न है। उद्योगों के साथ इनमें अन्तर पड़ता जाता है।

इससे अगला मंत्र इस प्रकार है—

अग्ने वेर्होत्रं वेर्दूत्यमवतां त्वां द्यावापृथिवीऽअव त्वं द्यावापृथिवी स्विष्टकृद्देवेभ्यऽइन्द्रऽआज्येन हविषा भूत्स्वाहा सं ज्योतिषा ज्योतिः॥

—यजुः 2-9

इस मन्त्र का देवता है—'अग्निः'।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्रार्थ—(**अग्ने होत्रम् वेः दूत्यम् वेः त्वाम् द्यावा-पृथिवी अवताम्**) हे अग्ने [परमात्मन्]! [इस] यज्ञ को जानो। इस दूत कर्म को जानो। सूर्य और चन्द्र तुमको जानें।

(**त्वम् द्यावा-पृथिवी अव स्विष्ट-कृत देवेभ्यः**) तुमको सूर्य और पृथिवी जानें। शुभ कर्म करने वाले देवताओं से जानें।

(**इन्द्रः आज्येन हविषा भूत् सम् ज्योतिषा ज्योतिः स्वाहा**) हे इन्द्र! आज्य की हवि से [तृप्त] होवो अथवा (कर्म वाला) होवो। ज्योति से ज्योति मिल जाए और कल्याणकारी हो।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि यज्ञ (उद्योग) के दूत कर्म अर्थात् दूर-दूर तक अपने प्रभाव को फैलाने वाले कर्म को परमात्मा जाने। यज्ञ कर्म जो गृहस्थ कर रहा है, उसके कल्याणकारी प्रभाव, उस प्रभाव को दूर-दूर तक पहुँचाने को परमात्मा जाने और सूर्य एवं पृथिवी उस कार्य की रक्षा करें। सूर्य और पृथिवी की सामर्थ्य ईश्वर की है। इस कारण उन द्वारा परमात्मा की रक्षा की याचना की गई है। प्राकृतिक पदार्थों से याचना का अभिप्राय यह है कि उनका प्रयोग कर उनसे लाभ उठाया जाए।

इसी प्रकार इन्द्र, जो शक्ति है, उससे रक्षा की याचना की गई है। अभिप्राय यह है कि इनसे एक उद्योगपति अथवा व्यवसाय करने वाला मनुष्य लाभ उठाए।

मयीदमिन्द्रऽइन्द्रियं दधात्वस्मान् रायो मघवानः सचन्ताम्।
अस्माकम् सन्त्वाशिषः सत्या नः सन्त्वाशिषऽउपहूता पृथिवी
मातोप मां पृथिवी माता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा॥

—यजुः० 2-10

इस मन्त्र का देवता है—'इन्द्रः'।

मन्त्रार्थ—(**मयि इन्द्रः इदम् इन्द्रियम् दधातु**) मुझमें इन्द्र वह बल [सामर्थ्य] प्राप्त कराए।

(**अस्मान् रायः मघवानः सचन्ताम्**) हमको धनी-मानी लोग धन सम्पद प्राप्त कराएँ।

(**अस्माकम् आशिषः सत्याः नः सन्तुः**) हमारी कामनाएँ सफल हों।

(**उप-हूता पृथिवी माता माम् पृथिवी माता उप ह्वयताम्**) अनुज्ञ

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

की हुई पृथिवी माता मुझको हवि देवे।

(अग्निः आग्नीध्रात् स्वाहा) अग्नि अपना कार्य करती हुई कल्याणकारी हो।

इन्द्र-त्रिगुणात्मक शक्ति (यजमान के) बल को बढ़ावे और धन-सम्पदा वाले लोग यजमान के यज्ञ में सहायक होवें। अग्नि भी अपने स्थान पर जलती हुई कल्याणकारी हो। पृथिवी, जो माता की भाँति पालन करती है, वह नियत ढंग से हमारे यज्ञकार्य में आशीर्वाद देवे। अभिप्राय यह कि गृहस्थ इन सबसे अपने यज्ञ में सहायता ले।

अगला मन्त्र इस प्रकार है—

उपहूतो द्यौष्पितोप मां द्यौष्पिता ह्वयतामग्निराग्नीध्रात् स्वाहा। देवस्य त्वा सवितुः प्रसवेऽश्विनोर्बाहुभ्यां पूष्णो हस्ताभ्याम्। प्रति गृह्णाम्यग्नेष्ट्वास्येन प्राश्नामि॥

—यजुः 2-11

इस मन्त्र का देवता है—'द्यावा-पृथिवी' (सूर्य और पृथिवी)।

मन्त्रार्थ—(द्यौः पिता उप-हूतः) सूर्य अनुज्ञा वाला पिता हो। (अनुज्ञा का अभिप्राय है कि उसको आज्ञा है कि वह पृथिवी पर गृहस्थ की सहायता करे।)

(द्यौः पिता उप ह्वयताम्) सूर्य पिता मुझसे भलीभाँति हवि के रूप में स्वीकार हो। (हवि वह पदार्थ है जो यज्ञ में प्रयोग होता है और शुद्ध होकर यज्ञ में से निकलता है।)

(आग्नीध्रात् अग्निः स्वाहा) अग्नि-स्थान से आ रही अग्नि कल्याणकारी होवे।

(त्वा पूष्णः देवस्य सवितुः प्र-सवे अश्विनोः बाहुभ्याम् हस्ताभ्याम् प्रति गृह्णामि) तुमको (यज्ञ को) पुष्टिकारक सूर्यदेव के प्रसव में (से उत्पन्न) दोनों बाहों और हाथों को ग्रहण करता है (सूर्य किरणों और उनके गुण से लाभ उठाता है)।

(अग्नेः त्वा आस्येन प्र अश्नामि) तुमको (यज्ञ को) प्रयोग की अग्नि पकाने का कार्य करे (उद्योग में प्रयोग की अग्नि अपना कार्य भलीभाँति करे)।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि गृहस्थ को पृथिवी की भाँति सूर्य की

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अग्नि से भी कार्य लेना चाहिए। सूर्य अपनी दो प्रकार की किरणों—प्रकाश किरणों और उष्मा की किरणों को इस पृथिवी पर भेज रहा है।

पृथिवी और सूर्य दोनों मिलकर यज्ञ में सहायक हों।

अगला मन्त्र है—

एतं ते देव सवितर्यज्ञं प्राहुर्बृहस्पतये ब्रह्मणे।
तेन यज्ञमव तेन यज्ञपतिं तेन मामव॥

—यजुः 2-12

इस मन्त्र का देवता है—'सवितः'।

मन्त्रार्थ—(एतम् ते देव सवितः यज्ञम् बृहस्पतये ब्रह्मणे प्र आहुः) हे देव सविता! यह यज्ञ परमात्मा के लिए है, ऐसा विद्वान् कहते हैं।

(तेन यज्ञम् तेन यज्ञ-पतिम् तेन माम अव) इस कारण यज्ञ की, यज्ञ के स्वामी यजमान की (उद्योग के स्वामी की) और मेरी (अध्वर्यु की) रक्षा करो।

अगला मंत्र है—

मनो जूतिर्जुषतामाज्यस्य बृहस्पतिर्यज्ञमिमं तनोत्वरिष्टं यज्ञꣳ समिमं दधातु। विश्वे देवासऽइह मादयन्तामो ३ म्प्रतिष्ठ॥

—यजुः 2-13

इस मन्त्र का देवता है—'बृहस्पतिः'।

मन्त्रार्थ—(जूतिः मनः आज्यस्य जुषताम्) हे वेग से चलने वाले मन! तुम यज्ञ में आज्य का (यज्ञ में प्रयोग होने वाली सामग्री का) यज्ञ में प्रयोग करो। इसका अभिप्राय है कि मन से संकल्प किया जाए कि यज्ञ का सामान यज्ञ के लिए ही प्रयुक्त हो।)

(बृहस्पतिः इमम् यज्ञम् तनोतु) वेद का विद्वान् इस यज्ञ को विस्तार देता है।

(यज्ञम् अरिष्टम् इमम् सम् दधातु) भलीभाँति चलने वाला भलीभाँति धारण करो।

(विश्वे देवासः इह मादयन्ताम् ओ३म् प्रतिष्ठ) हे सम्पूर्ण देवताओ! इस यज्ञ में परमात्मा की प्रतिष्ठा से प्रसन्न होवो।

गृहस्थ का कार्य जो यज्ञरूप हो रहा है, उसको सफल देखकर सब विद्वान् लोगों को प्रसन्न होना चाहिए।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि यज्ञ 'ब्रह्मार्पणम्' होना चाहिए और इससे विद्वान् लोगों को प्रसन्न होना चाहिए।

अगला मन्त्र है—

एषा तेऽअग्ने समित्तया वर्धस्व चा च प्यायस्व। वर्धिषीमहि च वयमा च प्यासिषीमहि। अग्ने वाजजिद्वाजं त्वा ससृवाꣳ सं वाजजितꣳ संमार्ज्मि॥

—यजु: 2-14

इस मंत्र का देवता है—'अग्नि:'।

मन्त्रार्थ—(अग्ने ते एषा सम्-इत् तया वर्धस्व) हे अग्ने! तुम्हारा यह रचा हुआ [जगत्] उस द्वारा [यज्ञ द्वारा] वृद्धि को प्राप्त कराए (होवे)।

(च आ च प्यायस्व वर्धिषीमहि) और उस (वृद्धि को) पिये हुए हम उन्नति को प्राप्त होवें। (वृद्धि को पिये हुए का अभिप्राय है कि परमात्मा की कृपा से जो कार्य हम कर रहे हैं और उस कार्य में हमारे ज्ञान में जो वृद्धि होती है, उस ज्ञान से लाभ उठाते हुए हम अपने यज्ञकार्य अर्थात् उद्योगादि व्यवसाय में उन्नति करें।)

(च वयम् आ च प्यासिषीमहि) और हम अपने को तथा दूसरों को पिया हुआ बताएँ (अर्थात् उन्नत करें)।

(अग्ने वाज-जित् वाजम् त्वा स सृवां-सम् वाज-जितम् सम् मार्ज्मि) हे गतिशील बल को जीतने वाले (बल को जीतने वाली बलवान् अग्नि है।) मैं तुम्हारा संशोधन करता हूँ।

अग्नि बहुत बलवान् है। इस बलवान् अग्नि को मैं अपने प्रयोग में लाने के योग्य बनाता हूँ। उदाहरण के रूप में—विद्युत धारा बहुत ऊँचे स्तर (Voltage) की आ रही है। अपने कारखाने में कम स्तर (voltage) की प्रयोग होती है। तो उसका संशोधन कर, उसका प्रयोग करूँ। यह अर्थ है।

इस मंत्र में अग्नि को परमात्मा कहकर भी सम्बोधन किया माना है। परन्तु हम समझते हैं कि यहाँ अग्नि का अभिप्राय ऊर्जा से ही है।

इस दूसरे अध्याय में व्यवसाय अथवा उद्योग में परमात्मा के सहयोग की चर्चा है। पहले तो साक्षात् सृष्टि रचने वाले परमात्मा से सहायता की याचना की गई है। तदनन्तर अग्नि से सहायता लेने के लिए प्रेरणा है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तदनन्तर ऊर्जा की सहायता यज्ञकर्म में लेने के ढंग पर कहा है। इसके उपरान्त यह कहा है कि पृथिवी पर सब ऊर्जा, सूर्य की दो बाहों से आती है। तत्पश्चात् यह बताया है कि सूर्य की ऊर्जा के दो रूप हैं—अग्नि भौतिक और विद्युत। अतएव, इस मंत्र में कहा है कि अग्नि को शुद्ध करके प्रयोग करो। विद्युत को शुद्ध करने का अर्थ हमने बताया है, इसी प्रकार अग्नि के शुद्ध करने का उपाय भी है। पत्थर के कोयले को जला, उससे कारखाना चलाने के लिए जल से वाष्प बनाने के लिए अग्नि का प्रयोग किया जाता है। वाष्प से बड़े-बड़े रेल के इंजन हाँके जाते हैं।

इसी से कहा है कि गतिशील बल वाली को शुद्ध कर प्रयोग करूँ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

तृतीयः खण्डः

अग्नीषोमयोरुज्जितिमनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। अग्नीषोमौ तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि। इन्द्राग्न्योरुज्जिति-मनूज्जेषं वाजस्य मा प्रसवेन प्रोहामि। इन्द्राग्नी तमपनुदतां योऽस्मान् द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मो वाजस्यैनं प्रसवेनापोहामि॥

—यजुः 2-15

इस मंत्र का देवता है—'अग्निषोमौ' अर्थात् अग्नि और जल।

मन्त्रार्थ—(अग्नीषोमयोः उत्-जितिम् अनु उत् जेषम्) अग्नि और जल की उत्तम विजय के साथ स्वयं भी विजय को प्राप्त होऊँ। (अग्नि और जल पर विजय का अभिप्राय है, इसका सदुपयोग करना। जैसे भाप बनकर उससे शक्ति का उपार्जन करना। इस शोधन से मैं विजय प्राप्त करूँ (अर्थात् यज्ञरूपी कार्य में सफलता प्राप्त करूँ।)

(वाजस्य मा प्र-सवेन प्र ऊहामि) बल की उत्पत्ति से मैं उन्नति करूँ।

(अग्निषोमौ तम् अप नुदताम्) अग्नि और जल उसको दूर कर दें।

(यः अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विष्मः वाजस्य एनम् प्र-सवेन उप ऊहामि) जो हमसे द्वेष करें। (इसका अभिप्राय है जो हमारे कार्य में बाधाएँ हैं, जिनसे हम द्वेष करते हैं और जिन बाधाओं को हम दूर करना चाहते हैं) उनको बल से दूर भगाओ।

यह अग्नि और जल से आकांक्षा की गई है कि दोनों के संयोग से जब शुद्ध की हुई ऊर्जा प्राप्त हो, उससे कार्य में बाधाएँ दूर हो जाएँ।

इस ऊपर के मंत्र में पुनः कहा है—

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(इन्द्राग्नी तम् अप नुदताम् यः अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विष्मः वाजस्य एनम् प्र-सवेन अप ऊहामि) जो हमसे द्वेष करें, इन्द्र और अग्नि उनको दूर कर दें। इसका अभिप्राय है जो हमारे कार्य में बाधाएँ हैं, जिनसे हम द्वेष करते हैं, जिन बाधाओं को हम दूर करना चाहते हैं, उनको बल से दूर भगाओ।

अगला मंत्र है—

वसुभ्यस्त्वा रुद्रेभ्यस्त्वादित्येभ्यस्त्वा संजानाथां द्यावापृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्यावताम्। व्यन्तु व्योक्तꣳरिहाणा मरुतॉं पृषतीर्गच्छ वशा पृश्निर्भूत्वा दिवं गच्छ ततो नो वृष्टिमावह। चक्षुष्पाऽअग्नेऽसि चक्षुर्मे पाहि॥

—यजुः 2-16

इस मंत्र के पूर्वार्द्ध का देवता है 'द्यावा पृथिवी' और उत्तरार्द्ध का है 'मित्र वरुण'।

मन्त्रार्थ—(वसु-भ्यः त्वा रुद्रेभ्यः त्वा आदित्येभ्यः त्वा सम् जानाथाम्) वसुओं के लिए, रुद्रों के लिए, आदित्यों के लिए तुमको (यज्ञ को) दोनों—(द्यावा और पृथिवी) जानें।

इस भाग का देवता 'द्यावा पृथिवी' है। अभिप्राय है—सूर्य और पृथिवी। मंत्र में कहा है कि वसुओं के लिए, रुद्रों के लिए और आदित्यों के लिए, यह यज्ञ किया जा रहा है। इस कारण हमारे इस कार्य को सूर्य और पृथिवी जानें।

वसु आठ कहे जाते हैं। प्राण आठ हैं। मनुष्य में भी और कार्य-जगत् में भी। मनुष्य शरीर को कार्यरत रखने के लिए आठ प्राण हैं। पाँच ज्ञानेन्द्रियों में, एक कर्मेन्द्रियों में, एक महाप्राण और एक जीवात्मा।

जगत् में आठ प्राण हैं—अग्नि, वायु, इन्द्र और पंच तन्मात्रा। इनको पुष्ट करने के लिए यज्ञ किया जा रहा है। सूर्य और पृथिवी इसके साक्षी अर्थात् जानने वाले हैं।

रुद्र ग्यारह हैं। (शतपथ ब्राह्मण 4-5-7-1, 2) रुद्र वे शक्तियाँ हैं जो वसुओं का विरोध करती हैं। प्राणी के शरीर में रुद्र ह्रास उत्पन्न करते हैं और जगत् में ये प्रलय रूप हैं। आदित्य—(प्रकृति के परिणाम) बारह हैं। प्रकृति महत्, तीन अहंकार, परिमण्डल, मरुत, पंच महाभूत। ये बारह

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आदित्य, प्रकृति के परिणाम हैं।

मंत्र में कहा है कि इनके लिए हम यज्ञ कर रहे हैं। इस बात के साक्षी सूर्य और पृथिवी हैं।

(द्यावा-पृथिवी मित्रावरुणौ त्वा वृष्ट्या अवताम्) सूर्य और पृथिवी, मित्र और वरुण तुम्हारी (यज्ञ की) अपनी (अद्वितीय शक्ति की) वृष्टि (बौछार) के सहाय से रक्षा करें।

(सूर्य और पृथिवी तथा ऋण विद्युत और धन विद्युत अपने गुणों की बौछार से यज्ञ की रक्षा करें। इनसे जीवन यज्ञ को चलाएँ।)

(रिहाणा वयः अक्तम् व्यन्तु) वेद के विद्वान् लोग अथवा यज्ञ के विषय के विशेषज्ञ द्रुतगति से इसके कर्म को चलाएँ।

(मरुस्ताम् पृषतीः गच्छ) मरुतों को आधारभूत शक्ति प्राप्त हो (मरुत-अणु=molecule)। उसकी आधारभूत शक्ति है चुम्बकीय शक्ति। यहाँ उसके लिए याचना की गई है।

(पृश्निः वशा भूत्वा दिवम् गच्छ), अन्तरिक्ष (यज्ञ कार्य में उन्नति) वश में होवे। उससे सूर्य (सूर्य की देन-ऊर्जा) प्राप्त हो।

(ततः नः वृष्टिम् आ वह चक्षुष्पाः अग्ने असि चक्षुः मे पाहि) सूर्य की किरणों की) बौछार, चक्षुओं की रक्षा करने वाली, मेरे चक्षुओं की रक्षा करे।

अगला मंत्र है—

यं परिधिं पर्य्यधत्थाऽअग्ने देवपणिभिर्गुह्यमानः। तं तऽएतमनु जोषं भराम्येष नेत्वदपचेतयाताऽअग्नेः प्रियं पाथोऽपीतम्॥

—यजुः 2-17

इस मंत्र का देवता है—'अग्नि'।

मन्त्रार्थ—(अग्ने देव यम् गुह्यमानः परिधिम् परि अधत्थाः पणिभिः) हे अग्निदेव! गुप्त रूप से कार्य करती हुई वह पणियों द्वारा निश्चय होती है।

जैसे किसी कारखाने में विद्युत शक्ति से कार्य होता है। कार्य की परिधि अर्थात् कार्य की मात्रा, यद्यपि गुप्त है, इस पर भी वह व्यापारियों द्वारा जो कारखाने का माल खरीदते और बेचते हैं, निश्चय की जाती है। व्यापारियों की माँग ही निश्चय करती है कि कारखाना कितना माल तैयार करे।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(तम् त एतम् जोषम् अनु भरामि) तेरी उस (परिधि) को मैं (यज्ञ करने वाला अर्थात् कारखाने का स्वामी) विधि से अनुकूल रखता हूँ।

(एषः इत् न चेतया तै) इससे (यज्ञ) सीमा पार न करे।

(अग्नेः त्वत् प्रियम् पाथः अपीतम्) हे अग्ने! तुम्हारे लिए तुमको प्रिय और अनुकूल इच्छा प्राप्त हो।

इस मंत्र का अभिप्राय है—जब कारखाने में अग्नि (शक्ति) का प्रयोग होता है, उसमें पदार्थ बहुत मात्रा में तैयार होता है। उन पदार्थों की सीमा कि वह कितना बनाया जाए, व्यापारी लोग निश्चय करते हैं। पदार्थ की जितनी खपत प्रयोग करने वालों में होती हो, उतना ही बनाया जाए। कारखाने का स्वामी यह ध्यान रखे कि न तो पदार्थ व्यर्थ जाए, न ही माँग अधिक होने पर कच्चे माल की उपलब्धि कम होने पाए।

इससे अगला मंत्र है—

सꣳस्त्रवभागा स्थेषा बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः परिधेयाश्च देवाः। इमा वाचमभि विश्वे गृणन्तऽआसद्यास्मिन् बर्हिषि मादयध्वꣳ स्वाहा वाट्॥

—यजुः 2-18

इस मंत्र का देवता है—'विश्वे देवाः'।

मन्त्रार्थ—(देवाः बृहन्तः प्रस्तरेष्ठाः च परिधेयाः स्थ इषा संस्त्रवभागाः) विद्वान् लोग, जो ऊँचे पद पर प्रतिष्ठित हैं और उद्योग की परिधि को जानने वाले हैं, वे तेरा (यज्ञ के अन्न का) (शेष भाग जब सरकता हुआ उत्पन्न हुआ है) भोग करें।

अभिप्रायः यह है कि प्रत्येक कार्य में विद्वान् लोग जो उस उद्योग के विषय के ज्ञाता हैं और उच्च आसन पर विराजमान हैं अथवा जो उच्च दर्जे के कार्यों पर नियुक्त हैं, वे यज्ञ में से जो शेष भाग सरकता हुआ पृथक् हुआ है, उसका भोग करें।

(इमाम् अस्मिन् वाचम् बर्हिषि आसद्य विश्वे अभि गृणन्तः मादयध्वम् स्वाहा वाट्) इस (यज्ञ) में सम्पूर्ण कर्मकाण्ड को जानने वाले बैठकर मंत्रोच्चारण करते हैं और प्रसन्न होते हैं।

यज्ञ समाप्त हुआ। (उद्योग का वर्ष समाप्त हुआ) उसमें लाभ हुआ। इसमें से हवि का भाग, जो बचा है, वह उन विद्वानों को प्राप्त हो जो इसकी

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

योजना इत्यादि बनाते रहे हैं। उनको उच्चासन पर बैठाकर शेष भाग देवें और उनको प्रसन्न करें।

अगला मंत्र है—

घृताची स्थो धुर्यौ पातं सुम्ने स्थः सुम्ने मा धत्तम्। यज्ञ नमश्च तऽउप च यज्ञस्यं शिवे सन्तिष्ठस्व स्विष्टे मे संतिष्ठस्व॥

—यजुः 2-19

इस मन्त्र के देवता हैं—'अग्नि और वायु'।

मन्त्रार्थ—(धुर्य्यौ स्थः पातम् सुम्ने स्थ- मा सुम्ने घृताची धत्तम्) हे अग्नि और वायु! अपने धुरे (केन्द्र स्थान) पर सुख में स्थित होकर पालन करो और सुख में स्थापित करो।

(यज्ञ नमः च ते उप सम् तिष्ठस्व शिवे च यज्ञस्य सु-इष्टे मे सम् तिष्ठस्व) और यज्ञ तेरे लिए आदर के भाव में सम्यक् रूप में समीप स्थित होवे और इसका श्रेष्ठ इष्ट [उद्देश्य] कल्याणकारी हो और मेरे लिए सम्यक् मान से स्थित होवे।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि अग्नि तथा वायु अर्थात् शक्ति तथा गतियाँ उत्पन्न करने वाले यंत्र कारखाने में अपने-अपने केन्द्र-स्थान पर स्थित होकर सुगमता से कार्य करते रहें। ये सरलता से कार्य कर पावें और उसके परिणामस्वरूप हमें (यजमान को) भी सुख पहुँचावें।

अग्नेऽदब्धायोऽशीतम पाहि मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुरिष्ट्यै पाहि दुरद्मन्याऽअविषं नः पितुं कृणु। सुषदा योनौ स्वाहा वाडग्नये संवेशपतये स्वाहा सरस्वत्यै यशोभगिन्यै स्वाहा॥

—यजुः 2-20

इस मन्त्र का देवता है—'अग्नि सरस्वत्यौ' अर्थात् अग्नि और ज्ञान।

मन्त्रार्थ—(अग्नेऽदब्धायो अशीतम मा दिद्योः पाहि प्रसित्यै पाहि दुः इष्ट्यै पाहि दुर्-अदमन्यै अविषम् नः पितुम् कृणु) हे मनुष्य को निर्विघ्न जीवन देने वाले अग्नि (परमात्मा)! दुःख से मेरी रक्षा करो, बन्धनों से मुक्त करो। (तुम) कठिनाइयों को दमन करने योग्य हो, दुष्टजनों की संगत से रक्षा करो। हमारे अन्न को दोषरहित करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(शुषदा योनौ स्वाहा वाट् अग्नये संवेश-पतये स्वाहा सरस्वत्यै यशः भगिन्यै स्वाहा) सुखपूर्वक रहने योग्य घर में सहयोग के स्वामी अग्नि और सरस्वती बहुत कल्याणकारी हों (ऊर्जा और विद्या कल्याणकारी होवें।)

ऊर्जा सर्वव्यापक परमात्मा की देन है और ज्ञान भी परमात्मा का दिया है। ये दोनों हमें प्राप्त हों, जिससे हम अपने यज्ञरूप 'कर्म' को सुगमता और सरलता से कर सकें और कल्याण के भागी होवें।

उद्योग के सन्दर्भ में अभिप्राय यह है कि जो लाभांश हो, बाँट दिया जाए और परमात्मा से प्रार्थना की जाए कि यह यज्ञ फलता-फूलता रहे। कार्य-कुशल लोग और ज्ञानवान् लोग इसकी सहायता करते रहें और 'कार्य' तथा ज्ञान का स्वामी परमात्मा हमारे कल्याण में सहायक हो।

अगले मंत्र में कहा है—

वेदोऽसि येन त्वँ देव वेद देवेभ्यो वेदोऽभवस्तेन मह्यं वेदो भूयाः। देवा गातुविदो गातुँ वित्त्वा गातुमित। मनसस्पतऽइमं देव यज्ञꣳ स्वाहा वाते धाः॥

—यजुः 2-21

इस मंत्र का देवता है—'प्रजापतिः'।

मन्त्रार्थ—(देव त्वम् येन वेदा असि) हे परमात्मन्! जिससे तुमको जानते हैं, वह तुम (यज्ञ) हो। (इसका अभिप्राय यह है कि वह जिससे परमात्मा का ज्ञान हो) वह यज्ञ परमात्मा का स्वरूप ही है।

(तेन देवेभ्यः वेदः अभवः) इससे [उस यज्ञ से, जिससे तुम्हारा ज्ञान होता है] तुम विद्वान् लोगों के लिए ज्ञान देने वाले हो।

वेदज्ञान यज्ञ रूप है जो परमात्मा की ओर से मिला है। वह परमात्मा द्वारा ही दिया हुआ है।

(मह्यम् देवाः भूयः) मेरे लिए भी ज्ञान देने वाले होवो।

(गातु-विदः देवाः गातुम् गातुम् वित्त्वा) संसार के पदार्थों के गुण, कर्म, स्वभाव को जानने वाले विद्वानों से (तुम) ज्ञानवान् होकर ऐसा करो (हमें ज्ञान दो)।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि प्रजापति परमात्मा प्रजाओं का पालन करने वाला है। वह स्वयं ज्ञानस्वरूप है। वेदज्ञान उसने ही दिया है। इस

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

संसार के ज्ञानी लोग उसके ज्ञान से ही ज्ञानवान् होते हैं और फिर हमारा कल्याण करते हैं। इस कारण हे प्राणस्वरूप परमात्मा! तुम इस सृष्टि-रचना यज्ञ को धारण करते हुए हमारे इस यज्ञ को भी धारण करो।

सं बर्हिरक्ताः हविषा घृतेन समादित्यैर्वसुभि सम्मरुद्भिः समिन्द्रो विश्वदेवेभिरंक्तां दिव्यं नभो गच्छतु यत् स्वाहा॥

—यजु: 2-22

इस मंत्र का देवता है—'इन्द्र:'।

मन्त्रार्थ—(यत् बर्हिः सम् इन्द्र सम् आदित्यैः वसु-भिः सम् मरुत्-भिः विश्वदेवेभिः हविषा घृतेन सम् अक्ताम्) जब इन्द्र (यज्ञ को) अन्तरिक्ष में ले जाता है आदित्यों, वसुओं, रुद्रों, मरुतों और विश्वे देव: के साथ [इनके सहाय से] हवि—

(दिव्यम् नभः गच्छतु स्वाहा) दिव्य आकाश में पहुँचकर कल्याण करे [यज्ञ अर्थात् उद्योग व्यवसायादि को उन्नत कर लोक-कल्याण का कारण हो जाए।]

यहाँ भी वसु, रुद्र, आदित्य, मरुत से अभिप्राय अन्तरिक्ष के दिव्य पदार्थ हैं। उनके सहयोग से इन्द्र-शक्ति यज्ञ (उद्योग) को उन्नत करे और जब वह उद्योग उन्नत हो जाए तो लोक-कल्याण करने वाला हो।

उब्बट इत्यादि भाष्यकारों ने यज्ञ का अर्थ देवयज्ञ ही किया है। यह यज्ञ का संकुचित अर्थ है। वस्तुत: मनुष्य का कोई भी कार्य यज्ञ-रूप हो सकता है, यदि वह कार्य गृहस्थ केवल अपने अथवा अपने परिवार के लिए न समझ सर्वहिताय समझे।

अगला मन्त्र है—

कस्त्वा विमुञ्चति स त्वा विमुञ्चति कस्मै त्वा विमुञ्चति तस्मै त्वा विमुञ्चति। पोषाय रक्षसां भागोसि॥

—यजु: 2-23

इस मंत्र का देवता है—'प्रजापति'।

अग्नि में पदार्थ किसलिए छोड़ा जाता है अर्थात् यज्ञ किसलिए किया जाता है?

मन्त्रार्थ—(कः त्वा वि मुञ्चति सः त्वा वि मुञ्चति) कौन तुमको (यज्ञ को) छुड़ाता है? परमात्मा तुमसे यज्ञ छुड़ाता है। (जो यज्ञ (1-6 में)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

आरम्भ किया गया था, अब पूर्ण होता है। इस कारण प्रश्न किया गया है कि किसने तुम्हारा यज्ञ सम्पूर्ण कर तुमको इससे मुक्त किया है?)

मंत्र ही इसका समाधान करता है। परमात्मा ने इसे पूर्ण कर दिया है। इस कारण वह ही इससे तुम्हें विमुक्त करता है।

(कस्मै त्वा वि मुञ्चति तस्मै त्वा वि मुञ्चति) किस प्रयोजन से तुम्हें यज्ञ से विमुक्त किया गया है, उसी प्रयोजन से विमुक्त किया गया है, जिस प्रयोजन से तुम्हें इस काम पर युक्त किया था। अर्थात् लोक-कल्याण करने के लिए। इससे लोक-कल्याण हुआ है। इस कारण तुम यज्ञ से विमुक्त हो।

(पोषाय) (यह शब्द ऊपर के पद के साथ है) जन-जन के पालन के लिए।

(रक्षसाम् भागः असि) दुष्टों का भाग अब तू रह गया है [अभिप्राय यह है कि उद्योग अथवा व्यवसाय का प्रयोजन हो गया। अब जो कुछ इसमें बचा है, वह उनके लिए छोड़ दो जो बाधाएँ उपस्थित करते रहे थे।]

जब किसी लोक-कल्याण कार्य में लोक-कल्याण हो जाए और फिर भी कुछ बचे तो वह उनके लिए छोड़ दो जो पहले कार्य में बाधक रहे थे।

अगला मंत्र है—

सं वर्च्चसा पयसा सं तनूभिरगन्महि मनसा सꣳ शिवेन। त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायोऽनुमार्ष्टु तन्वो यद्विलिष्टम्॥

—यजुः 2-24

इस मंत्र का देवता है—'त्वष्टा'। त्वष्टा सूर्य के मध्य भाग को कहते हैं जिसमें से आपः प्रस्फुटित हो-होकर अन्तरिक्ष में चारों ओर फैल रहे हैं। यह माना जाता है कि सूर्य के मध्य भाग में से आपः फूट-फूटकर निकल रहे हैं और वे सूर्य रश्मियों के रूप में फैल रहे हैं। पृथिवी पर भी आ रहे हैं।

मंत्रार्थ—(सम् वर्च्चसा सम् पयसा सम् तनूभिः सम् मनसा सम् शिवेन) वर्चस (शारीरिक ओज) को प्राप्त कर, भरण-पोषण के साथ शरीर को सुख देने वाले पदार्थों से मन को संतोष देने वाले कर्मों से सब कल्याणकारी कार्यों से (तृप्त होवें)।

(त्वष्टा सु-दत्रः वि दधातु) त्वष्टा भलीभाँति सुख देने वाला हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(मार्ष्टु रायः यत् तन्व, वि-लिष्टम्) शुद्ध पवित्र धन का जो विस्तार पा चुका है, वह हमारे व्यवहार को सिद्ध करे।

वेद कह रहा है कि हे गृहस्थ! तुमने जीवन-कार्य आरम्भ किया था यज्ञ रूप में। सब विधि-विधानों को पूर्ण करते हुए तुमने धन का विस्तार किया है। अर्थात् तुम समृद्ध धनवान् बन गए हो। यह धन वैभव तुम्हारे व्यवहारों को ठीक रखे अर्थात् धनवान् होकर तुम कुचक्रों में न फँस जाओ।

इससे आगे का मंत्र है—

दिवि विष्णुर्व्यक्रꣳस्त जागतेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽन्तरिक्षे विष्णुर्व्यक्रꣳस्त त्रैष्टुभेन च्छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मः। पृथिव्यां विष्णुर्व्यक्रꣳस्त गायत्रेण छन्दसा ततो निर्भक्तो योऽस्मान्द्वेष्टि यं च वयं द्विष्मोऽस्मादन्नादस्यै प्रतिष्ठायाऽअगन्म स्वः सं ज्योतिषाभूम॥

—यजुः० 2-25

इस मंत्र का देवता है—'विष्णुः'—सर्वव्यापक परमात्मा।

मन्त्रार्थ—(जागतेन छन्दसा ततः निः भक्तः विष्णुः दिवि वि अक्र-स्त यः अस्मान् द्वेष्टि यम् वयस् द्विष्मः अन्तरिक्षे च विष्णुः वि अक्र-स्त) जगति छन्द से इसे (अपने कार्य को) सर्वव्यापक परमात्मा से संयुक्त कर सूर्य के प्रकाश से शुद्ध करता हूँ। जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनका हम विरोध करते हैं, परमात्मा उनको अन्तरिक्ष में ही निस्तेज कर दे।

(ततः अन्तरिक्षे त्रैष्टुभेन छन्दसा विष्णुः निः भक्तः यः अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विष्म्ः) और अन्तरिक्ष में त्रिष्टुप छन्द से सर्वव्यापक परमात्मा से (यज्ञ को) संयुक्त कर जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनका हम विरोध करते हैं, उनको निष्क्रिय करें।

(ततः गायत्रेण छन्दसा पृथिव्याम् विष्णुः निः भक्तः यः अस्मान् द्वेष्टि यम् च वयम् द्विष्मः) और पृथिवी पर गायत्री छन्द से सर्वव्यापक परमात्मा से (यज्ञ को) मुक्त कर जो हमसे द्वेष करते हैं और जिनका हम विरोध करते हैं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(अस्यै प्रतिष्ठायै अगन्म स्वः सम् ज्योतिषा अभूम) इनके [हमारे यज्ञों के जो वैदिक छन्दों से किये गये हैं] सम्पन्न होने पर हम स्वर्ग में जाएँ और ज्योतिर्मय परमात्मा से मिल जाएँ।

गृहस्थ ने अपने यज्ञों को वेद के विधि-विधानानुसार सम्पन्न किया है। इससे वह समझता है कि उसको स्वर्ग प्राप्त होगा और वह परमात्मा से मिलकर स्वर्ग का आनन्द भोग करेगा।

अगला मंत्र है—

स्वयंभूरसि श्रेष्ठो रश्मिर्वर्चोदाऽअसि वर्चो मे देहि। सूर्यस्यावृतमन्वावर्ते॥

—यजुः 2-26

इस मंत्र का देवता है—'ईश्वरः' अर्थात् सृष्टि-रचयिता परमात्मा।

मन्त्रार्थ—स्वयम्-भूः असि श्रेष्ठः रश्मिः वर्चः दाः असि मे वर्च देहि) हे ईश्वर! तू अजन्मा है, तू अति श्रेष्ठ गुण रखने वाली रश्मियों [शक्ति तरंगों] का बल है। मुझे बल दो।

(सूर्यस्य आ-वृतम् अनु वा वर्ते) कर्म के व्यवहार का मैं पालन करूँ। सूर्य यज्ञ-रूप कार्य कर रहा है। मैं गृहस्थ भी उसी प्रकार व्यवहार करूँ।

अग्ने गृहपते सुगृहपतिस्त्वयाऽग्नेऽहं गृहपतिना भूयासꣳ सुगृहपतिस्त्वं मयाऽग्ने गृपतिना भूयाः। अस्थूरि णौ गार्हपत्यानि सन्तु शतꣳ हिमाः सूर्य्यस्यावृतमन्वावर्ते॥

—यजुः० 2-27

इस मंत्र का देवता है—'अग्निः'।

मन्त्रार्थ—(अग्ने गृह-पते सु-गृहपतिः त्वया अग्ने अहम् गृह पतिना भूयासम्) हे अग्ने! तू गृहपति है। हे अग्ने! तुम गृहपति के द्वारा मैं कुशल गृहपति बनूँ।

अभिप्राय यह है कि गृहपति ने यज्ञ किया है। वह परमात्मा के सहाय से किया है। कहा है कि परमात्मा इस गृह का स्वामी है और उसके सहाय से ही मैं गृहस्थ, कुशल गृहपति बन सका हूँ।

(अग्ने त्वम् मया सु-गृहपतिः गृह-पतिना भूयाः) हे अग्ने! तुम मेरे घर के कार्यों के द्वारा गृहपति हो जाओ।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(नौ गार्ह-पत्यानि शतम् हिमाः अस्थूरि सन्तु) हम दोनों [गृहस्थ और उसका पथ-प्रदर्शक अग्नि अर्थात् परमात्मा] सैकड़ों वर्षों तक ऐसे व्यवहार करें जैसे दो घोड़े वाले रथ। अर्थात् यज्ञकार्य में गृहस्थ और परमात्मा, दोनों का सहयोग सैकड़ों वर्ष तक चले।

(सूर्य्यस्य आ-वृतम् अनु आ वर्त्ते) सूर्य के व्यवहार का पालन मैं सदा करूँ।

इस प्रकार जो यज्ञ (अर्थात् उद्योग अथवा व्यवसाय आरम्भ किया गया था) वह चल रहा है और गृहस्थ कह रहा है कि परमात्मा के सहाय से ही वह सफल हुआ है। उसने भी यत्न किया है और परमात्मा के आदेश का पालन किया है। अन्त में वह प्रार्थना करता है कि उसका और परमात्मा का सहयोग इस यज्ञकार्य में सैकड़ों वर्ष तक चलता रहे।

अगले मंत्र में भी कहा है—

अग्ने व्रतपते व्रतमचारिषं तदशकं तन्मेऽराधीदमहं यऽएवाऽस्मि सोऽस्मि॥

—यजुः० 2-28

इस मंत्र का देवता है—'अग्निः'।

मन्त्रार्थ—(अग्ने व्रत-पते व्रतम् अचारिषम् तत् अशकम्) हे अग्नि- स्वरूप परमात्मन्! तू व्रतों का स्वामी है। मैंने व्रत किया था और उसका पालन कर सका हूँ।

(मे तत् अराधि) मेरा वह (व्रत) सिद्ध हुआ है।

(इदम् अहम् अस्मि यः सः एव अस्मि) यह मैं हो गया हूँ (जो) वह है।

(गृहस्थ-पालन का व्रत लिया था और यह प्रण किया था कि इस जीवन में दो प्रकार की अग्नियाँ जलाऊँगा। अभिप्राय यह है कि इस गृहस्थ जीवन में दो प्रकार के कार्य करूँगा। एक गृहस्थ-पालन का और दूसरा लोक-कल्याण का। वह सम्पन्न कर दिया है। इस यज्ञरूपी जीवन को पूर्ण सिद्ध कर गृहस्थ अब वैसा हो गया है, जैसा परमात्मा चाहता था।)

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

यजुर्वेद के द्वितीय अध्याय का सारांश

यज्ञ सम्बन्धी व्यवहार का सिद्धान्त रूप में वर्णन प्रथम अध्याय में कर दिया गया है। वहाँ हमने यह स्पष्ट किया था कि मनुष्य का प्रत्येक कार्य यज्ञरूप हो सकता है, यदि वह लोकहित के उद्देश्य से किया जाए। जब अपना हित भी लोकहित में ही हो।

उद्योग तथा व्यवसाय भी यज्ञरूप किया जा सकता है। किसी उद्योग में जिन वस्तुओं की आवश्यकता का वर्णन किया है, वे हैं—शक्ति (energy) और अन्न। अन्न का अभिप्राय है निर्माण की जाने वाली वस्तुओं में उपादान कारण। इसे कच्चा माल (raw material) भी कहा जाता है।

यज्ञ है कच्चे माल को उपयोगी रूप में परिवर्तित करना। सामान्य रूप में किसी भी कार्य में कुछ लक्ष्यों को सम्मुख रखकर कार्य करने को भी यज्ञ कहा जा सकता है।

इस द्वितीय अध्याय में यह बताया है कि शक्ति तथा कच्चा माल, दोनों परमात्मा की देन हैं। परमात्मा क्या है? यह बताना इस वेद के विषय के अन्तर्गत नहीं है। यह ऋग्वेद का विषय है। वैसे परमात्मा के कुछ लिंगों का वर्णन इस वेद में भी स्थान-स्थान पर किया गया है। परन्तु पूर्ण वर्णन नहीं है। इतना तो बताया है कि वह सर्वव्यापक अग्निस्वरूप है (all pervading energy) और साथ ही यह ज्ञानवान् भी है। वर्तमान भाषा में कह सकते हैं—ज्ञानस्वरूप चेतन-शक्ति (All Pervading Conscious Intelligent Energy)।

इन विशेषणों अर्थात् सर्वव्यापकता, चेतनता और ज्ञान-स्वरूपता के बिना भी एक शक्ति इस संसार में दिखाई देती है। इस शक्ति का एक नाम अथवा स्रोत 'इन्द्र' है।

इन्द्र सर्वव्यापक नहीं है। यह चेतन भी नहीं है। यह ज्ञानस्वरूप भी नहीं है।

इन्द्र का एक रूप ऊष्मा (heat) है। यह रूप सर्वव्यापक नहीं है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

कहीं ऊष्मा होती है और कहीं नहीं होती। इस कारण यह शक्ति परमात्मा नहीं। इसी प्रकार विद्युत इन्द्र का एक अन्य रूप है। यह भी सर्वव्यापक नहीं है। घरों में प्रयोग होने वाली विद्युत जो ताँबे की तारों द्वारा एक स्थान से दूसरे स्थान पर पहुँचाई जाती है, इन्द्र ही है। यह न तो सर्वव्यापक है, न ही चेतन है। चेतन उसको कहते हैं जो स्वत: किसी कार्य को आरम्भ करे, उसे स्वयं दिशा दे और फिर उसे स्वयं ही समाप्त कर सके। यह विद्युत (इन्द्र) ऐसी नहीं। इस कारण इन्द्रशक्ति तो है, परन्तु यह परमात्मास्वरूप अग्नि नहीं है।

इसी प्रकार एक शक्ति है रासायनिक। इसे वैदिक भाषा में तन्मात्रा कहते हैं। वह भी परमात्मा की पर्याय नहीं है। परमात्मा के लक्षण और शक्ति के लक्षणों में अन्तर है। परमात्मा चेतन है और शक्ति चेतन नहीं है।

यह इन्द्र भी परमात्मा की कृपा से प्रकट होता है। यह परमाणु में छुपी शक्ति है।

ऐसे चेतन परमात्मा का आश्रय मनुष्य के सब कार्यों में रहता है। इस कारण मनुष्य के यज्ञरूप कर्मों में भी परमात्मा का आश्रय रहता है।

यजुर्वेद के इस दूसरे अध्याय में यही बताया गया है कि मनुष्य के सब कार्य बिना परमात्मा की सहायता के हो नहीं सकते।

जब कोई भी कार्य आरम्भ किया जाता है तो इसका भविष्य अन्धकार में छुपा होता है। मनुष्य नहीं जानता कि कार्य सफल होगा अथवा नहीं और यदि होगा तो कहाँ तक जाएगा।

इस कारण, कहा है कि उद्योग की नींव गहरी खोदी जाए और इस नींव पर उद्योग की योजना ऊँची बनाई जाए, अन्तरिक्ष में जाने वाली।

परमात्मा के लिए और जनसाधारण के लिए यज्ञ का संकल्प किया जाए। भूमि पर हल चलाने से लेकर ऊँचा से ऊँचा कार्य भी यज्ञमय हो सकता है। यज्ञ के आरम्भ से ही विद्वानों को सुरक्षा के साथ बैठाने का स्थान निश्चय करे। विद्वान् यज्ञ का दिशा दर्शन कराएँगे।

जब कोई उद्योग-व्यवसाय यज्ञरूप अर्थात् लोक-कल्याण के उद्देश्य से किया जाए तो यह परमात्मा का कार्य ही हो जाता है। अग्नि परमात्मा का स्वरूप है और वह भी यज्ञ चलाने वाला है।

अत: अपने कार्य को परमात्मा का कार्य समझकर ही करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा ने जगत् के निर्माण, पालन और प्रलय के लिए इक्कीस व्याहृतियाँ (शक्तियाँ) नियुक्त की हुई हैं। परमात्मा इन इक्कीस शक्तियों को हमारे यज्ञ की रक्षा में नियुक्त करे। अर्थात् इनका उचित प्रयोग हम करें।

गृहस्थ की परिधि अर्थात् सामर्थ्य की सीमा परमात्मा ही है। इसका अभिप्राय यह है कि यज्ञरूप किया कार्य परमात्मा का कार्य है। इस कारण परमात्मा की पूर्ण सामर्थ्य उसकी सामर्थ्य हो जाती है। अर्थात् यज्ञरूप में किए जा रहे कार्य की कोई सीमा नहीं। जहाँ तक कोई फैलाना चाहे, फैला सकता है। मनुष्य पर राज्य तथा अन्य कारणों से सीमा बनती है, परन्तु कार्य के यज्ञरूप होने पर वह सीमा भी नहीं रहती।

वेद ने यज्ञ में प्रयोग होने वाले पदार्थों को रखने के तीन स्थान बताए हैं। एक स्थान है जहाँ माल कभी समाप्त न हो। यह गोदाम कहा जा सकता है। दूसरा है जिसमें माल गोदाम से दुकान तक अथवा उद्योग केन्द्र तक लाया जाता है और तीसरा स्थान वह पात्र है जहाँ से माल निकाल-निकालकर प्रयोग में लाया जा सके अथवा बिक सके।

आगे कहा है कि अग्नि बहुत बलवान् है। यह बलवानों को जीतने वाली है। यह वस्तुओं को शुद्ध करने की सामर्थ्य रखती है।

शुद्ध करने का अभिप्राय है कच्चे माल से उपकारी पदार्थ बनाना। जब कच्चे माल से उपकारी पदार्थ बन जाता है तो बच जाता है 'किट्ट' अर्थात् मैल तथा यह व्यर्थ का माल कहा जाता है। यही कच्चे माल को शुद्ध करना कहा है।

यह ठीक है कि उद्योग में अथवा किसी भी कार्य में गति इन्द्र ही देता है, परन्तु इन्द्र का आविर्भाव भी परमात्मा के ओज से ही होता है। इस कारण गति का मूल कारण परमात्मा ही है।

परमात्मा के कुछ नियम हैं। अतः परमात्मा की शक्ति का प्रयोग करने के लिए उन नियमों का पालन करना अत्यावश्यक है।

आगे कहा है कि यज्ञ अथवा यज्ञ के द्यूत कर्म (अर्थात् दूर-दूर तक फैले हुए व्यवसाय को) भलीभाँति जाना जाए।

इन्द्र परमात्मा के अधीन है। इस कारण कहा है कि परमात्मा ही यज्ञपति है और इन्द्र (energy) का प्रयोग भरपूर करो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मनुष्य में जो बल है, वह भी इन्द्र की देन ही है। इस कारण मनुष्य का परिश्रम भी इन्द्र अर्थात् परमात्मा की ही देन है।

सूर्य तथा पृथिवी को परमात्मा ने प्राणी की सहायता के लिए युक्त किया हुआ है। सूर्य, अग्नि अर्थात् शक्ति का स्रोत है। इस कारण अग्नि हमारा (यज्ञ-पति का) कल्याण करने वाली हो।

यज्ञ में अग्नि का कार्य परमात्मा के लिए ही हो। विद्वान् लोग इसको वेद के कथनानुसार ही विस्तार दें। विद्वान् लोगों के ऐसे यज्ञ से सबको प्रसन्न होना चाहिए जो वेद के विधि-विधान के अनुसार किया जा रहा है।

कार्य परमात्मा के रचे हुए जगत् के लिए ही हो अर्थात् सार्वजनिक कल्याणकारी होवे। यज्ञकर्म में जहाँ उद्योग को विस्तार देने के लिए परमात्मा की ऊर्जा की आवश्यकता पड़ती है, वहाँ मनुष्य का परिश्रम भी तो परमात्मा द्वारा दी हुई ऊर्जा से ही कार्य करता है। अत: सब कुछ ही परमात्मा की सामर्थ्य से सम्पन्न होता है। इस कारण यज्ञ परमात्मा का ही है।

शक्ति भी तब ही कार्य करती है, जब यह गति करती है। शक्ति का बहाव ही कार्य कर सकता है। बहाव अर्थात् गति परमात्मा उत्पन्न करता है।

अग्नि और जल के संयोग से शक्ति का प्रवाह चलता है। अग्नि से कार्य करने वाले इंजन में भी एक स्थान पर अग्नि होती है और दूसरे स्थान पर उसे ठण्डा रखने के लिए जल रहता है।

विद्युत में ठण्डे का अर्थ शान्त स्थान है। उच्च स्तर पर से शून्य स्तर की ओर ही शक्ति का बहाव होता है। इसी कारण कहा है कि अग्नि और सोम के योगदान से ही शक्ति में गति उत्पन्न होती है।

अतएव सूर्य जो गर्म है, से शक्ति का बहाव पृथिवी की ओर हो रहा है, जो शान्त है। इसी प्रकार मित्र से वरुण की ओर शक्ति का बहाव होता है। मित्र है ऋण विद्युत का स्रोत और वरुण है धन विद्युत का केन्द्र स्थान। विद्युत का बहाव ऋण से धन की ओर होता है।

यद्यपि ऊर्जा का कार्य किसी उद्योग में छुपा हुआ होता है, परन्तु इसके कार्य की सीमा उद्योगपति निश्चय करते हैं। शक्ति तो अपार है, परन्तु उद्योगपति इसका उतना ही प्रयोग कर सकते हैं जितनी आवश्यकता हो।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

किसी उद्योग-व्यवसाय की सीमा विद्वान् लोग (जानकार लोग) ही निश्चय करते हैं, शक्ति नहीं निश्चय करती। इस कारण विद्वानों को यज्ञ की हवि में से शेष बचा भाग मिलते रहना चाहिए। वर्षभर का शेष उनको मिलना चाहिए अर्थात् वर्ष समाप्त होने पर जब हानि-लाभ का चिट्ठा तैयार किया जाए, तब विद्वानों का भाग निकाल लिया जाए।

यज्ञ में अग्नि और वायु अपने केन्द्र-स्थान पर स्थित हो कार्य करते हैं। अग्नि तो शक्ति है ही। इसके दो रूप हैं। एक वह जो कर्म उत्पन्न करता है और दूसरा वह है जो गति उत्पन्न करता है। दोनों कार्य अपने-अपने स्थान पर स्थित कुशलतापूर्वक होते रहें।

आगे कहा है कि ऊर्जा और ज्ञान दोनों परमात्मा की देन हैं। ज्ञान होने से ही ऊर्जा का प्रयोग हो सकता है। इस कारण गृहस्थ परमात्मा से इनके सदा बने रहने की याचना करता है।

विद्वानों का ज्ञान परमात्मा का दिया हुआ है। ज्ञान से ही गृहस्थ के सब कार्य चलते हैं। इस कारण विद्वानों का आदर, सत्कार अर्थात् उनका कहा मानना ही यज्ञ है।

यूँ तो व्यक्तिगत परिश्रम ही मूल परिश्रम है, परन्तु प्राकृतिक शक्तियाँ इस व्यक्तिगत परिश्रम की सहायक हो जाती हैं और यज्ञ-कार्य आकाश तक (अभिप्राय यह कि उन्नति के शिखर तक) पहुँच जाता है। इस उन्नति में वसु, रुद्र, और आदित्य भी सहायक होते हैं। इन तीनों प्रकार की शक्तियों का अभिप्राय मंत्रों के अर्थों में बता आए हैं।

यजु: वेदमंत्र 1-6 में यह पूछा गया था कि किसने उसे गृहस्थाश्रम में आने की प्रेरणा दी है और फिर इस गृहस्थाश्रम में किसने गृहस्थ को यज्ञ-रूप कार्य करने की प्रेरणा दी है? यजु:० 2-23 में कहा है कि अब वह अपने कार्य में सफल हो चुका है और गृहस्थाश्रम की अवधि और कार्य सफलतापूर्वक समाप्त कर गृहस्थ जीवन से पृथक् हो रहा है। इसकी भी प्रेरणा की जा रही है।

वेद का अभिप्राय है कि जिसने उसे कार्य पर लगाया था, वही उसे कार्य से मुक्त होने को कह रहा है। उसकी अवस्था ऐसी आ गई है कि वह उपार्जन का कार्य छोड़ अपने जीवन के रहस्य के विषय में ज्ञान प्राप्त करे। यह प्रेरणा देने वाला भी परमात्मा ही है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सूर्य के मध्य भाग में विस्फोट हो रहा है और वहाँ से ही वह शक्ति चारों ओर प्रसारित हो रही है। वेद का कहना है कि त्वष्टा सूर्य के मध्य में ही है। जो वहाँ विस्फोट हो रहा है, वह परमात्मा ही कर रहा है।

इस कारण उस शक्ति का प्रयोग सूर्य में जगति छन्दों [जगत् उत्पादक नियमोपनियमों] से चल रहा है। अन्तरिक्ष में त्रिष्टुभ छन्दों से हो रहा है और पृथिवी पर गायत्री छन्दों से हो रहा है। अर्थात् वेद के आदेशानुसार हो रहा है। सूर्य से लेकर पृथिवी पर्यन्त सब कार्य परमात्मा की कृपा से हो रहे हैं। वेद ईश्वरीय ज्ञान है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उपसंहार

कर्म—यजुर्वेद के प्रथम अध्याय के प्रथम मंत्र में ही यह कहा है कि सविता देव ने इस पृथिवी पर अन्न तथा ऊर्जा प्राणियों में श्रेष्ठतम कर्म करने के लिए दिये हैं और सविता है देन परमात्मा की।

अर्थात् परमात्मा ने मनुष्य को कर्म करने की सामर्थ्य दी है और उसे श्रेष्ठतम कर्म करने चाहिएँ।

कर्म तीन प्रकार के कहे गये हैं—(1) नित्य कर्म, (2) नैमित्तिक कर्म, (3) निष्काम भाव से किये कर्म।

ये तीनों प्रकार के कर्म मनुष्य द्वारा होते हैं। इनमें से किसी भी प्रकार के कर्म को जीवन में नि:शेष नहीं किया जा सकता। ये तीनों प्रकार के कर्म एक पशु में भी देखे जाते हैं। मनुष्य और पशु में अन्तर क्या है ? यह समझने की बात है।

पूर्व इसके कि यह बताया जाए कि पशु और मनुष्य में, इन तीनों प्रकार के कर्मों में कहाँ अन्तर देखा जाता है, हम इन तीनों की व्याख्या कर देना चाहते हैं।

नित्य कर्म तो उन कर्मों को कहते हैं जिनको नित्य करना पड़ता है, जिनसे शरीर चालू रह सके। इनकी गणना भगवद्गीता में कराई है। वहाँ कहा है—

पश्यञ्शृण्वन्स्पृशञ्जिघ्रन्नश्नन्गच्छन्स्वपञ्श्वसन्। प्रलपन्विसृजन्गृह्णन्नुन्मिषन्निमिषन्नपि। इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन्॥

—भ० गीता 5-8, 9

अर्थ है—देखते हुए, सुनते हुए, स्पर्श करते हुए, सूँघते हुए, खाते

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हुए, चलते हुए, सोते हुए, श्वास लेते हुए;

बोलते हुए, (मल) त्यागते हुए, (भोजन) ग्रहण करते हुए, (पलकें) खोलते हुए, (पलकों को) भींचते हुए, ये सब कर्म करते हुए ज्ञानी पुरुष यह मानें कि ये इन्द्रियों के कर्म इन्द्रियों द्वारा ही हो रहे हैं। इनका किसी पाप-पुण्य से सम्बन्ध नहीं। ये सब नित्य कर्म हैं।

इन्द्रियाँ अपने स्वभाववश ये कर्म करती रहती हैं। इस कारण इनका यज्ञ-कर्म के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं।

दूसरे प्रकार के कर्म हैं नैमित्तिक कर्म। ये किसी प्रयोजन से किये जाते हैं। इनका प्रयोजन यदि लोक-कल्याण का हो तो ये पुण्य कर्म बन जाते हैं जो मनुष्य को पवित्र करते हैं। ऐसा यजुर्वेद (1-3) में कहा है।

वेद का कथन है कि मनुष्य कर्म करने पर विवश है। कुछ न कुछ प्रति क्षण वह करता रहता है।

इस विषय में भी भगवद्गीता में कहा है—

न हि कश्चित्क्षणमपि जातु तिष्ठत्यकर्मकृत्।
कार्यते ह्यवशः कर्म सर्वः प्रकृतिजैर्गुणैः॥

—भ० गीता 3-5

अर्थ है—कोई भी क्षण नहीं जाता बिना कर्म किये। प्रकृति के गुणों से उत्पन्न स्वभाव से विवश हुआ मनुष्य कर्म करता है।

अतः ये नित्य कर्म अथवा नियत कर्म मनुष्य प्रतिक्षण करता रहता है। इन कर्मों के करने का, शरीर पालन के अतिरिक्त अन्य कुछ फल नहीं है।

यह ठीक है कि शरीर का पालन भी अन्य कर्मों को करने में माध्यम है। इस कारण अनायास ही ये कर्म भी मनुष्य के जीवात्मा के पवित्र कर्मों में अन्य ढंग से सहायक होते हैं। इस पर भी जब तक नैमित्तिक कर्म ठीक न हों, इनका कुछ भी फल नहीं होता।

पशु के प्रायः कर्म नियत (नित्य) कर्म ही होते हैं। इसी कारण पशु की योनि को भोग योनि कहा है। इसका अभिप्राय यह है कि वह पशु अपने भविष्य जन्म के निर्माण में कुछ नहीं करता। वह कर सकता नहीं। इसमें कारण यह है कि वह निमित्त कर्म करना नहीं जानता।

निमित्त कर्म वे कर्म हैं जो किसी प्रयोजन को सिद्ध करने के लिए किये जाते हैं, जो उद्देश्य से किये जाते हैं। ये कर्म ही मनुष्य के जीवात्मा

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

को ऊपर अथवा नीचे की गति प्रदान करते हैं।

गतियों के विषय में ब्रह्मसूत्रों में कहा है—

सुकृतदुष्कृते एवेति तु बादरिः ॥
संयमने त्वनुभूयेतरेषामारोहावरोहौ तद्गतिदर्शनात् ॥

—ब्र०सू० 3-1-11, 13

अर्थ है—अच्छे और बुरे कर्म ही हैं जो (मरणोपरान्त) गति का निश्चय करते हैं।

यम लोक में कर्मफल भोगकर जीवात्मा पुनः मनुष्य योनि में आते हैं।

इन सूत्रों से पहले ब्रह्मसूत्र में यह कहा जा चुका है कि मरणोपरान्त जीवात्मा सूक्ष्म शरीर से लिपटा हुआ प्राण-शक्ति से जाता है। इन सूत्रों में कहा है कि अच्छे कर्म करने से ऊपर को गति करता है और दुष्कृत से यम लोक को। यम योनि से अभिप्राय उस योनि से है, जहाँ जीवात्मा भोग ही भोगता है। उस योनि में निमित्त-कर्म न करने के कारण ऊपर अथवा नीचे को गति नहीं है। वह योनि है जिसमें जीवात्मा केवल बुरे कर्मों का फल ही भोगा करता है। ये फल समाप्त होने पर वह पुनः मनुष्य जीवन में आता है और इस योनि में निमित्त कर्म करने की सामर्थ्य पा जाता है।

कहने का अभिप्राय यह है कि निमित्त कर्म ही हैं जो जीवात्मा को मानव योनि से ऊपर अथवा मानव योनि से नीचे की योनियों की ओर ले जाते हैं।

अतएव तीनों प्रकार के कर्मों से नैमित्तिक कर्म सर्वाधिक महत्ता रखते हैं। यजुर्वेद में इन्हीं कर्मों को यज्ञरूप करने के लिए कहा है। इन कर्मों द्वारा फल को, स्वार्थ त्यागकर, केवल उतना ही अपने पास रखकर, जितना नित्य कर्मों को करने के लिए आवश्यक है, शेष सब फल लोक-कल्याण में व्यय कर दे तो उस मनुष्य की गति ऊपर की दिशा में होनी निश्चय है। इन यज्ञरूपी कर्मों को निष्काम कर्म भी कहते हैं।

अतः तीसरी प्रकार के वे कर्म हैं जो यज्ञ कर्म हैं अथवा जिनको निष्काम कर्म भी कहते हैं।

यज्ञ में और निष्काम कर्म में थोड़ा-सा अन्तर है। निष्काम कर्म में कर्म की सफलता-असफलता की चिन्ता नहीं की जाती। परन्तु यज्ञ कर्म में चिन्ता की जाती है। क्योंकि यज्ञ कर्म मुख्य रूप में अर्थात् अधिकांश रूप में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दूसरों के हित के लिए होता है, इस कारण उनकी चिन्ता मन में किसी प्रकार का विकार उत्पन्न नहीं करती।

इस प्रकार कर्म के इस त्रिविध रूप को समझकर ही मनुष्य जीवन में सफल कार्य कर सकता है। नित्य कर्म मनुष्य के जीवन-यापन का ही कार्य करते हैं। हाँ, उस जीवन-यापन के कर्मों का भविष्य के साथ इतना ही सम्बन्ध है कि वे जीवन में निमित्त कार्य करने की योग्यता रखते हैं।

परन्तु शरीर को दीर्घायु, सुदृढ़ और स्वस्थ रखने से शरीर जो कुछ करेगा, वे निमित्त कर्म ही होंगे और उनका फल भी वही होगा जो हमने ऊपर बताया है।

कर्मों का भगवद्‌गीता में एक अन्य प्रकार से विभाजन भी किया गया है। मनुष्य के व्यवहार को तीन श्रेणियों में बाँटा है। एक को कर्म कहते हैं, दूसरे को विकर्म और तीसरे को अकर्म कहा है। करणीय अर्थात् करने योग्य कर्म को कर्म कहा है। विकर्म न करने योग्य कर्मों को और अकर्म कुछ न करने को अर्थात् नैष्कर्म्य होने को। इन तीनों व्यव्हारों के विषय में गीता में स्पष्ट कथन है। वह इस प्रकार है। कर्म और विकर्म में भेद नहीं है। नित्य कर्म, कर्म हैं, नैमित्तिक कर्म भी कर्म हैं, तथा यज्ञ कर्म अथवा निष्काम कर्म भी कर्म ही हैं। तीनों प्रकार के कर्म विकर्म भी हो सकते हैं।

उदाहरण के रूप में गाय का दूध पीना एक मनुष्य का नित्य कर्म है। परन्तु नित्य मद्यपान विकर्म होगा। है तो यह भी नित्य कर्म ही। कदाचित् स्वभाव बन जाने पर पीने वाले के लिए वह नित्य कर्म हो सकता है। इस पर भी यह विकर्म है। यह इस कारण कि नित्य कर्म जिस कारण से किये जाते हैं, मद्य सेवन उस उद्देश्य को हानि पहुँचाता है। अत: यह मनुष्य का एक नित्य कर्म होते हुए भी विकर्म है, न करने योग्य कर्म है।

इस प्रकार एक अन्य उदाहरण लिया जा सकता है। एक व्यक्ति नित्य प्रात:काल शीतल जल से स्नान करता है। ग्रीष्म ऋतु में यह ठीक है, परन्तु शीत देश अथवा शीतकाल में यह विकर्म भी हो सकता है।

अत: नित्य कर्म भी इस कर्म-विकर्म के विचार से दो प्रकार के हो सकते हैं और विकर्म होने पर शरीर पालन के स्थान शरीर का नाश भी कर सकते हैं।

इस पर भी नित्य कर्म, चाहे तो वे कर्म हों और चाहे विकर्म हों,

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इनका प्रभाव शरीर के रखने अथवा विनष्ट करने तक ही है। इनकी सीमा जीवात्मा के नैमित्तिक कर्मों को करने के लिए एक महान् साधन (शरीर) रखने अथवा न रखने तक ही है। नैमित्तिक कर्मों का फल भिन्न है।

नैमित्तिक कर्म भी कर्म और विकर्म के विचार से दो प्रकार के हैं। कर्म का उद्देश्य ठीक है अथवा अशुद्ध है इस विचार से ये दो प्रकार हैं।

करणीय नैमित्तिक कर्म क्या हैं ? इसकी विवेचना जीवन के उद्देश्य और जीवन के सम्बन्ध में धारणा पर निर्भर करती है। एक मनुष्य जो नास्तिक है और जीवन को जन्म से मरणपर्यन्त मानता है, जन्म से पहले कुछ नहीं था मरणोपरान्त कुछ नहीं रहेगा, ऐसा मानता है, उसके लिए करणीय नैमित्तिक कर्म कुछ अन्य होंगे और नैमित्तिक विकर्म कुछ अन्य होंगे।

इसके विपरीत एक व्यक्ति जो यह मानता है कि जीवात्मा अनादि तथा अव्यय है, यह जन्म-मरण की सीमा से परे है। साथ ही जब वह यह मानता है कि इस जीवन में किये कर्म का फल अगले जन्म में भी जाता है तो उसके लिए नैमित्तिक कर्म और नैमित्तिक विकर्म भिन्न हो जाते हैं।

अतएव कर्म और विकर्म के निर्णय करने से पूर्व जीवात्मा के अनादित्व के विषय में विचार स्थिर होने आवश्यक हैं। यहाँ हम यह मानकर विचार कर रहे हैं कि जीवात्मा अनादि और अव्यय है। इस जीवन के कर्मफल मरणोपरान्त भी रहते हैं और प्राप्त होते हैं। ऐसी अवस्था में कर्मों के लिए ऐसे निमित्त उत्पन्न होने आरम्भ हो जाएँगे जो श्रेष्ठ हों, जो कल्याणकारी हों।

अत: नैमित्तिक कर्मों को दिशा देने के लिए जीवन-मीमांसा के विषय में विचार करना चाहिए। जीवन-मीमांसा अर्थात् जीवन सम्बन्धी विचार दो प्रकार के हैं। एक वे जो गीता 2-43, 44 में वर्णित हैं। वहाँ कहा है—

यामिमाँ पुष्पितां वाचं प्रवदन्त्यविपश्चितः।
वेदवादरताः पार्थ नान्यदस्तीति वादिनः॥
कामात्मानः स्वर्गपरा जन्मकर्मफलप्रदाम्।
क्रियाविशेषबहुलां भोगैश्वर्यगतिं प्रति॥
भोगैश्वर्यप्रसक्तानां तयापहृतचेतसाम्।
व्यवसायात्मिका बुद्धिः समाधौ न विधीयते॥

—भ० गीता 2-42, 43, 44

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

अभिप्राय यह है कि अज्ञानी लोग [सांसारिक ज्ञान में ही रत कामी पुरुष] सुन्दर वाणी में यह कहते हैं कि (यह जीवन) अनेक क्रियाओं से युक्त, स्वर्ग से भी अधिक (आनन्द देने वाला) इस जन्म में ही फल देने वाला है। ऐसे भोगविलास में लीन बुद्धिविहीन मनुष्य की बुद्धि स्थिर नहीं होती।

ऐसे मनुष्यों के कर्मों के निमित्त कर्म वे बनते हैं जिनमें करने वाले की दृष्टि इस संसार और जीवन तक ही सीमित होती है।

परन्तु कर्मफल तो एक जन्म से दूसरे जन्म में भी जाते देखे जाते हैं। इस कारण जो ऐसा मानते हैं, उनके कर्मों के निमित्त [उद्देश्य] विभिन्न होते हैं।

इसी कारण वेद ने जीवन के कर्मों को यज्ञरूप करने के लिए कहा है। इसका पूर्ण आधार इसी बात पर है कि जीवात्मा अपने कर्मफलों से आकर्षित भली-बुरी योनियों में जाता है।

अभिप्राय यह है कि नैमित्तिक कर्मों में भी कर्म और विकर्म दोनों श्रेणियाँ होती हैं। कर्म-विकर्म के अतिरिक्त भगवद्गीता में अकर्म की भी गणना की गई है। अकर्म का अर्थ है निष्क्रिय बने रहना। गीता ने इसको स्वतः कुछ नहीं माना। इसे या तो कर्म का सहायक माना है अथवा विकर्मों का सहायक माना है। गीता में कहा है—

कर्मण्यकर्म यः पश्येदकर्मणि च कर्म यः।
स बुद्धिमान्मनुष्येषु स युक्तः कृत्स्नकर्मकृत्॥

—भ० गीता 4-18

अर्थ है—जो अकर्म में कर्म [अथवा विकर्म] देखता है और कर्म में अकर्म, वह ही मनुष्यों में बुद्धिमान् है। वह सम्पूर्ण कर्मों में अकर्म कर रहा होता है।

अभिप्राय यह है कि किसी भी कर्म में मनुष्य निष्क्रिय नहीं होता। वह कर्म अथवा विकर्म में भाग ले रहा होता है।

संसार में जो मनुष्य अथवा जातियाँ, अच्छाई तथा बुराई, अभिप्राय यह कि कर्म और विकर्म में निष्पक्ष रहना चाहती हैं, परन्तु ऐसा सम्भव नहीं; अकर्म या तो कर्म (अच्छाई) की सहायता कर रहा होता है अथवा विकर्म (बुराई) की सहायता कर रहा होता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वेद में कर्म की बहुत महिमा है और बार-बार कहा है कि ऋतों का ध्यान रखकर कर्म करें।

:: 2 ::

ऋत—वेद में ऋत शब्द कई बार प्रयुक्त हुआ है। इसकी व्याख्या भी वेदार्थ समझने में अत्यावश्यक है। ऋत के अर्थ निम्न वेद मंत्रों से भलीभाँति स्पष्ट हो जाते हैं—

ऋतं च सत्यं चाभीद्धात् तपसोऽध्यजायत।
ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रो अर्णवः॥
समुद्रादर्णवादधि संवत्सरो अजायत।
अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी॥

—ऋ 10-190-1, 2

इन दोनों मंत्रों का देवता है—'भाववृत्तम्' अर्थात् रचना का वृत्तान्त।

मन्त्रार्थ—(ऋतम् च सत्यम् तपसः अभि-इद्धात्) ऋत और सत्य [व्यक्त जगत्], उसके [परमात्मा के] तप [प्रयत्न] से प्रकाश में आता है [प्रत्यक्ष में आता है];

(ततः अधि अजायत) उसी से (सब पदार्थ) उत्पन्न होते हैं;

(ततः रात्रि अजायत अर्णवः समुद्रः) उसी से प्रलय होती है और फिर अन्तरिक्ष से काल (और दिशा) उत्पन्न होते हैं;

(विश्वस्य वशी अहोरात्राणि मिषतः वि-दधत् वशी) सम्पूर्ण को वश में करने वाला (ब्रह्म) दिन और रात को गति में लाता है।

मंत्र का अभिप्राय यह है कि परमात्मा अपने प्रयत्न से इस संसार की रचना और प्रलय ऋत और सत्य से करता है। सत्य का अभिप्राय व्यक्त जगत् है।

इन्हीं की सहायता से प्रलय होने पर आकाश प्रकट होता है और फिर (ऋतों) के सहाय से अन्तरिक्ष में हलचल (agitation) उत्पन्न होती है। उसमें हलचल होने से पुनः जगत् बन जाता है।

इन मंत्रों से यह स्पष्ट है कि ऋत का सम्बन्ध सृष्टि के बनने-बिगड़ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

से है। स्पष्ट है कि प्रकृति के व्यक्त रूप के बनने और बिगड़ने में जो नियम हैं, वे ही ऋत हैं। एक अन्य मंत्र इस संबंध में है—

ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति पूर्वीऋतस्य धीतिर्वृजिनानि हन्ति।
ऋतस्य श्लोको बधिरा ततर्द कर्णा बुधानः शुचमान आयोः॥

—ऋ० 4-23-8

इस मंत्र का देवता है—'इन्द्र'।

मन्त्रार्थ—(ऋतस्य हि शुरुधः सन्ति) निश्चय से ऋत के शक्ति प्रोत्साहक झोंके होते हैं [शुरुध का अर्थ मोनियर विलियम करता है—invigorating droughts—ऐसी तरंगें जो शक्ति का संचार करती हैं।]

(पूर्वीः वृजिनानि ऋतस्य धीतिः) प्राचीन बलों की वृद्धि ऋतों की ही थी।

(ऋतस्य श्लोकः कर्णा बधिरा हन्ति) ऋतों की स्तुति कानों का पतन [बहरापन] नाश करती है। (कान का उल्लेख सब इन्द्रियों के प्रतीक रूप में है।)

(ततर्द बुधानः शुचमान आयोः) वह नाश करने वाले बुद्धिमान् शुद्ध करने वाले और जीवन का उपदेश देने वाले हैं। (अभिप्राय यह है कि रचना, चलन और प्रलय के नियम हैं।)

इस मन्त्र से भी यही प्रकट होता है कि ऋत् ऐसे नियम (natural laws) हैं जिनसे सृष्टि बनती, चलती और फिर टूट जाती है। ये ऋत शुद्ध करने वाले हैं। शुद्ध करने का अर्थ है—कच्चे पदार्थों से सुन्दर, सुखद और उपकारी पदार्थ बनाना। अभिप्राय यह है कि इन ऋतों के अनुसार ही पदार्थ उपयोगी बनते हैं।

एक अन्य मन्त्र है—

ऋतं ये मान ऋतमिद् वनोत्यृतस्य शुष्मस्तुरया उ गव्युः।
ऋताय पृथिवी बहुले गभीरे ऋताय धेनू परमे दुहाते॥

—ऋ० 4-23-10

इस मन्त्र का देवता है—'इन्द्र'।

मन्त्रार्थ—(ये मान ऋतम् इत् वनोति) यमन करने वाला ऋत है, स्तोता भी ऋत है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

(ऋतस्य शुष्मः तुर-याः उ गव्युः) ऋत का बल शीघ्रता से प्राप्त होता है, जैसे गाय का दूध।

(ऋताय बहुले गभीरे) ऋत के लिए बहुत गम्भीर (कथन है)।

(ऋताय धेनू परमे दुहते पृथ्वी) ऋत के लिए गाय के दुहने की भाँति प्रयोग है।

ऋत प्राकृतिक नियमों का नाम है और कहा है कि इनसे संसार के कर्म ऐसे चलते हैं, जैसे गाय का दूध दुहा जाता है अथवा पृथिवी पर कार्य चलता है।

इसी प्रकार वेद में ऋत शब्द का अर्थ समझने के लिए बहुत कुछ कहा है। संक्षेप में इसके अर्थ हैं, ईश्वरीय नियम, जिनसे संसार के कार्य नियमपूर्वक चलते हैं।

इनका उल्लेख नहीं हो सकता। न ही मनुष्य के इस संसार में व्यवहार इनका निर्णय करते हैं। इनको प्राकृतिक नियम ही बताते हैं।

सामान्य भाषा में इसका अर्थ सत्य भी लिया जाता है। अभिप्राय ईश्वरीय नियमों से ही है। सत्य उसके भीतर ही समा जाता है। सत्य व्यक्त-जगत् को भी कहते हैं। जगत् बनने के नियम ही ऋत हैं।

:: 3 ::

अपाः—वेद में 'आपाः' शब्द का प्रयोग भी बहुत हुआ है। सामान्य भाष्यकार 'आपाः' से अर्थ करते हैं—जल। हम समझते हैं कि यह अशुद्ध है। निघण्टु में उदकों के खण्ड में इनका वर्णन है। परन्तु उदक का अर्थ जल नहीं है। कम से कम निघण्टु संकलनकर्ता ऐसा नहीं मानता। यास्क उदक के अर्थ लिखता है—

उदकं कस्मात्। उनत्तीति सतः।

—यास्क निरुक्त 2-24

अर्थ है—(कोई पदार्थ) उदक क्यों कहा जाता है? इस कारण कि यह गीला करता है। (अभिप्राय यह है कि चिपक जाता है।)

पृथिवी पर केवल जल ही ऐसा पदार्थ नहीं है, जो चिपक जाता है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

उदाहरण के रूप में मिट्टी का तेल, घी, सब प्रकार के तेल, अनेक रासायनिक पदार्थ हैं जो चिपकते अथवा गीला करते हैं। निघण्टु में उदकों के खण्ड में भी कई ऐसे पदार्थ कहे हैं जो जल से किसी प्रकार की समानता नहीं रखते और उदक हैं। उदाहरण के रूप में जामि, शवः, ओजः, इत्यादि कई शब्द हैं जो उदक कहे हैं, परन्तु वे जल नहीं हैं।

निघण्टु की उदक की कण्डिका में—'जामि, ओजः, शवः' पद भी आए हैं।

'जामि' का अर्थ है—बहिन [भाई की बहिन]।

'ओजः' का अर्थ है—बल।

'शवः' का अर्थ है—बल।

इस प्रकार आपाः जल नहीं। ये क्या हैं, वे निम्न मंत्रों से स्पष्ट होता है।

ऋग्वेद का एक मंत्र है (1-163-1) जिसमें कहा है कि आदि नाद घोर गूँज करता हुआ अन्तरिक्ष में उत्पन्न हुआ और तीव्र गति से फैल गया।

दूसरे मंत्र (ऋ० 1-163-2) में कहा है कि (यम) परमात्मा से दिया हुआ, यह अर्वः उस पर लगाम लगा देता है।

यह (अर्वा) यम के उत्पन्न किए को त्रित लगाम के रूप में लगा देते हैं।

फिर तीसरे मंत्र (ऋ० 1-163-3) में कहा है—वह (त्रित) साम्यावस्था में था। साम्यावस्था से रूप बदलता है और तीन निबन्धन (गुट्ट) बन जाते हैं।

और फिर चौथे मंत्र (ऋ० 1-163-4) में कहा है—

उन तीन दिव्य गुटों को आपाः कहते हैं। वे अन्तरिक्ष के मध्य में बनते रहते हैं। उनसे महान् जगत् उत्पन्न हुआ है।

वर्तमान वैज्ञानिकों की भाषा में इनको इलेक्ट्रोन, प्रोटोन, न्यूट्रोन कहा जाता है। वैदिक भाषा में इनको मित्र, वरुण और अर्यमा कहा है। इनको सांख्य में तीन अहंकार—धन, ऋण और शून्य—कहा है। (ये शक्ति के वाहक हैं।)

यजुर्वेद में विद्युत के रूप में इनका वर्णन है। अपः सूर्य में हो रहे विघटन से उत्पन्न होते हैं और सूर्य से धाराओं में अन्तरिक्ष में चारों ओर

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

फैल रहे हैं। इनकी धाराएँ सूर्य से पृथिवी पर भी आती हैं और यही ऊर्जा है जो पृथिवी के प्राणी प्राप्त कर उनका प्रयोग करते हैं।

यह कहा है कि अग्नि विद्या (science of energy) के जानने वाले यजमान के यज्ञ में सहायक हों। इसका अभिप्राय यह है कि यजमान के उद्योग तथा व्यवसाय में विद्युत लगी हो तो विद्युत के इंजीनियर (electrical engineers) यजमान की सहायता करें। विद्युत को धारा रूप में बहाने और रोकने का प्रबन्ध किया जाना चाहिए।

:: 4 ::

अग्नि—अग्नि को समझने के लिए मंत्र ऋ० 1-1-1 अति स्पष्ट है। मंत्र इस प्रकार है—

अग्निमीळे पुरोहितं यज्ञस्य देवमृत्विजम्।
होतारं रत्नधातमम्॥

इस मंत्र का देवता है—'अग्निः'।

मन्त्रार्थ—(यज्ञस्य देवम् पुर-हितम् ऋत्विजम् होतारम् रत्न-धातमम् अग्निम् ईळे)

यज्ञ के [सृष्टि रचना के] देनेवाले [करनेवाले] [उससे भी] पहले कल्याण करने वाले ऋत्विक् [बार-बार शक्ति रखने वाले] यज्ञ के स्वामी जगत् के सब सुन्दर पदार्थों को धारण करने वाले अग्नि की मैं स्तुति करूँ।

स्तुति का अभिप्राय है—गुण, कर्म, स्वभाव का ज्ञान प्राप्त करना और उस पर चिन्तन करना।

इस मंत्र में अग्नि के कुछ विशेष गुणों का वर्णन है। उन गुणों को समझने से यह पता चलता है कि अग्नि एक महान् शक्ति है जो इस सृष्टि-रचना के कार्य से पहले भी थी और कल्याण की भावना रखती थी। उसने सृष्टि का निर्माण किया और जगत् के ये सब सुन्दर पदार्थ बनाए।

यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि अग्नि के बनाए हैं अथवा अग्नि के सहाय से किसी अन्य ने बनाए हैं। अतः वैदिक साहित्य में अग्नि उस निर्माण करने वाली शक्ति का नाम है, जिसे भूमण्डल की भाषाओं में

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

परमात्मा, ईश्वर, खुदा, गॉड इत्यादि कहते हैं।

अग्नि जगत् का उपादान कारण नहीं है। उपादान कारण तो स्वयं बनता है, बनाता नहीं। उपादान कार्य करने वाला नहीं होता, उस पर तो कार्य किया जाता है।

अतः, हमारा मत है कि परमात्मा शक्ति-रूप, सृष्टि-रचना से पहले था और बार-बार सृष्टि को रचता है। यही अग्नि है। यदि इसे सरल भाषा में कहें तो यह चेतन शक्ति है।

एक अचेतन शक्ति भी इस संसार में है। उदाहरण के रूप में, घरों में प्रकाश करने वाली, कल-कारखाने चलाने वाली, बादलों में चमकने वाली विद्युत। यह अचेतन इस कारण है क्योंकि इसमें ईक्षण करने का गुण नहीं है।

लकड़ी अथवा कोयला जलाने से जो अग्नि उत्पन्न होती है, वह अग्नि नहीं जो मंत्र 1-163-1 में अर्वः के नाम से कही गई है। ब्रह्मसूत्रों में परमात्मा के वर्णन में वैश्वानर को भी अग्नि कहा है। वहाँ सूत्र है—

वैश्वानरः साधारणशब्दविशेषात्॥

—ब्र०सू० 1-2-24

अर्थ हैं—वैश्वानर अग्नि सामान्य शब्द के विशेष अर्थ लेने चाहिएँ।

इसका अभिप्राय है कि वैश्वानर सामान्य शब्द ही है, परन्तु जब विशेष अर्थों में लिया जाता है तो यह परमात्मा का प्रतीक समझा जाता है।

हमारा यह कहना है कि यह सीमा स्थान है सामान्य अग्नि में और विशेष अग्नि में। विशेष अग्नि वह है जो चेतन भी है। इसके अतिरिक्त जगत् में जो अग्नि है, उसे जातवेदः अग्नि कहते हैं।

वस्तुस्थिति यह है कि अर्वः से ही वैश्वानर का अभिप्राय है।

हिरण्यगर्भ (Nebula)—हिरण्यगर्भ में परमात्मा का तेज जिसे अर्वः कहा है, होता है। वह दूसरी प्रकार की अग्नि, जो अचेतन है, को उत्पन्न करता है।

यह कैसे?

इसको समझने के लिए हमने मंत्र (ऋ० 1-163-2) ऊपर दिया है। उस मंत्र का पूर्वार्द्ध इस प्रकार है—

यमेन दत्तं त्रित एनमायुनगिन्द्र एणं प्रथमो अध्यतिष्ठत्।

अर्थ हैं—यमन करने वाले परमात्मा से दी हुई लगाम को त्रित ने

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

स्वीकार कर लिया। वहाँ पहले इन्द्र अधिष्ठित था।

अभिप्राय यह है कि त्रित पर पहले इन्द्र का राज्य था। उस पर (सृष्टि-रचना के समय) अर्वः सवार हो गया और इन्द्र प्रत्यक्ष हो गया। यह हम शतपथ ब्राह्मण के प्रमाण (6-1-1-1, 2) से वर्णन कर चुके हैं। इस मंत्र में भी यही बताया है कि परमाणु में इन्द्र अधिष्ठित था। परमात्मा के तेज ने उसे बाहर प्रकट कर दिया और स्वयं त्रित [परमाणु] पर लगाम लगाकर सवार हो गया। यह लगाम ही वैश्वानर है।

हिरण्यगर्भ में यही घटता है। परमात्मा का तेज अर्वः के रूप में प्रकट होता है और परमाणु में छुपे इन्द्र को प्रकट करता है। हिरण्यगर्भ में इन्द्र का तेज, ताप और प्रकाश के रूप में प्रकट होता है।

वह प्रकाश तथा ताप अग्नि कहाता है। इसी कारण ऋषि ने कहा है कि यह है तो सामान्य अग्नि ही जो इन्द्र का रूप है, परन्तु विशेष अर्थ में वैश्वानर कहाती है।

कहने का अभिप्राय यह है कि हिरण्यगर्भ में परमाणुओं की साम्यावस्था भंग हो रही होती है और प्रचण्ड अग्नि के रूप में इन्द्र प्रकट हो रहा होता है। इस प्रकार ऋग्वेद मंत्र 1-1-1 में अग्नि और परमात्मा पर्यायवाचक हैं। वह अग्नि चेतन है।

परन्तु हिरण्यगर्भ में अग्नि इन्द्र को उत्पन्न करती है और उस प्रक्रिया से महान् ऊष्मा तथा प्रकाश उत्पन्न होता है। यह प्रकाश और ऊष्मा शक्ति है जो चेतन नहीं है।

ये दोनों एक नहीं हैं। एक प्रकृति का अंग है और दूसरा सदा रहने वाला तेज है। इसे ही ऋ० 10-129-2 में 'आनीत अवातम्' कहा है।

वस्तुतः वेदमंत्रों में जब प्रथम प्रकार की अग्नि का वर्णन होता है, तो वह परमात्मा का प्रतीक ही है। दूसरी प्रकार की अग्नि को ऊर्जा कहा है।

:: 5 ::

इन्द्रः

वेद में अग्नि तथा इन्द्र इन दो देवताओं (अर्थात् विषयों) पर कई मंत्र हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

वास्तव में संसार में दो शक्तियाँ हैं जो पूर्ण संसार को संचालित कर रही हैं। यद्यपि संसार में लकड़ी, कोयला इत्यादि जलाने से भी अग्नि उत्पन्न होती है। यास्क ने भी—'द्यु स्थाने अग्नि' और 'पृथिवी स्थाने अग्नि' का वर्णन किया है। द्यु स्थान अग्नि से ही दूसरी अग्नि का आविर्भाव होता है। पहले प्रकार की अग्नि तो सदैव उपस्थित रहती है और उसी का वर्णन ऋग्वेद मंत्र 1-1-1 में किया गया है। इस आदि अग्नि को ही परमात्मा माना जाता है, क्योंकि यह चेतन भी है।

चेतन का अभिप्राय है—जिसमें इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख, प्रयत्न और ज्ञान उपस्थित है। ज्ञान का अर्थ आरम्भ करने, चालू रखने और उसका अन्त करने की सामर्थ्य है। उस अनादि अग्नि में ये गुण देखे जाने से वह चेतन अग्नि (इच्छा, द्वेष, सुख, दुःख और प्रयत्न रखने वाली ज्ञानवान् अग्नि) है।

कुछ भाष्यकारों का मत इससे भिन्न है। वह हम स्पष्ट कर देना चाहते हैं।

न्यायदर्शन में आत्मा के लक्षण इस प्रकार लिखे हैं—

इच्छाद्वेषप्रयत्नसुखदुःखज्ञानान्यात्मनो लिङ्गमिति॥

—न्यायदर्शन 1-1-10

अर्थ हैं—आत्मा के लिंग हैं—इच्छा, द्वेष, प्रयत्न, सुख, दुःख, ज्ञान।

प्रायः सबके सब भाष्यकार यहाँ आत्मा से अभिप्राय केवल जीवात्मा लेते हैं। हमारे विचार में ये सब लिंग, जहाँ जीवात्मा के हैं, वहाँ परमात्मा के भी हैं। ईश्वर भी इच्छा करता है—सृष्टि-रचना की। ऐसा वेदमंत्र में कहा है—

कामस्तदग्रे समवर्तताधि मनसो।

—ऋ० 10-129-4

अर्थ हैं—आरम्भ में उसने (परमात्मा ने) मन में कामना की। यह सृष्टि-रचना की कामना थी।

इसी प्रकार वेद में परमात्मा का एक नाम रुद्र भी कहा है। रुद्र दुष्टों से द्वेष करता है। जो अनुकूल व्यवहार करते हैं, उनसे उसे प्रसन्नता होती है। यह सुख का संकेत है। इसी प्रकार दुष्ट व्यवहार वालों का विरोध दुःख का संकेत है। यह ठीक है कि परमात्मा का सुख, दुःख वैसा नहीं, जैसा मानवों का होता है। न ही उन कारणों से होता है जिनसे मानवों को सुख-

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

दु:ख होता है, इस पर भी अनुकूलता और प्रतिकूलता ही सुख-दु:ख का प्रतीक है।

इस प्रकार हमारा मत है कि परमात्मा के अपने गुण हैं और उनका वर्णन न्यायदर्शन 1-1-10 में है।

परमात्मा अग्निस्वरूप है, तो उसे ज्ञानस्वरूप मानना होगा। परन्तु इन्द्र भी अग्निस्वरूप है जो ज्ञानस्वरूप नहीं है। इन्द्र के विषय में हम बता चुके हैं कि यह परमाणु पर की त्रिगुणात्मक शक्ति है। ऋग्वेद 1-163-2 में बताया है कि परमात्मा के तेज परमाणु पर छाने से पहले उस पर इन्द्र था और परमात्मा के तेज से जब परमाणु की साम्यावस्था भंग हुई तो इन्द्र प्रकट हुआ। यह विद्युत भूमण्डल पर विभिन्न शक्ति के रूपों में दिखाई देती है।

यह बताया जा चुका है कि परमाणु में तीन प्रकार की शक्ति होती है। वह सत्त्व, रजस्, तमस् के नाम से जानी जाती है।

तमस् शून्य समान है। इस कारण इसका कार्य संसार में दिखाई नहीं देता। हाँ, सत्त्व तथा रजस् का कार्य दिखाई देता है।

इन तीन प्रकार की शक्ति को अंग्रेजी में नैगेटिव (ऋण), पौज़िटिव (धन) और न्यूट्रल (शून्य) कहते हैं।

प्राय: विद्युत की धारा ऋण से धन पक्ष की ओर जाती है। शून्य, जिसे तमस् कहते हैं, निष्क्रिय रहती है।

विद्युत धारा का प्रवाह धन से ऋण की ओर नहीं होता।

वैदिक भाषा में ऋण, धन और शून्य तीनों को इन्द्र कहा है।

परन्तु उस समय, जब ये तीनों पृथक्-पृथक् होती हैं, तो काम नहीं कर सकतीं। कारण यह है कि शून्य (०) तो कार्य करता ही नहीं; धन (+) बहती नहीं; बहती है ऋण (—)। इस कारण जो बहती है, वही कार्य कर सकती है।

अत: इन्द्र की शक्ति का ज्ञान ऋण (—) आवेश में ही, जब वह धारा प्रवाह बहती है तो होता है। इस कारण प्राय: ऋण (—) को ही इन्द्र समझा जाता है। धन (+) को वृत्र भी कहते हैं। वृत्र शब्द की व्युत्पत्ति बाधृ से है। जो बाधा डालता है क्योंकि धन (+) ऋण के वितरित होने में बाधक होता है, इस कारण इसे वृत्र का नाम दिया है।

ऋण (-) विद्युत प्रवाह में इलेक्ट्रोन (तेजस् अहंकार) होते हैं। वृत्र

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

हैं धन (+)अर्थात् वैकारिक अहंकार और शून्य (०) हैं तमस अहंकार अर्थात् न्यूट्रोन। वैदिक साहित्य में इनको मित्र, वरुण और अर्यमा के नाम भी दिए गए हैं।

वरुण (वैकारिक अहंकार) का मुख्य कार्य प्राणी की इन्द्रियों में माना जाता है।

मित्र, वरुण, अर्यमा के विषय में एक मंत्र है—

ज्योतिष्मतीमदितिं धारयत्क्षितिं स्वर्वतीमा सचेते दिवेदिवे जागृवांसा दिवेदिवे। ज्योतिष्मत् क्षत्रमाशाते आदित्या दानुनस्पती। मित्रस्तयोर्वरुणो यातयज्जनोऽर्यमा यातयज्जनः॥

—ऋ०1-136-3

इस मंत्र का देवता है—'मित्र वरुणौ'।

मंत्रार्थ—ज्योतिष्मतीम् अदितिम् स्व-वतीम् आसचेते दिवे-दिवे धारयत् क्षितिम् शक्तिशाली प्रकृति द्यूलोक में ठहरी हुई जागृत होकर दिनानुदिन अन्तरिक्ष को धारण करती है।

आदित्या दानुनः पती मित्रः वरुणः—प्रकृति से दान में मंत्र और वरुण मिलते हैं।

तयो यातयत् जनः अर्यमा यातयत् जनः—इन दोनों [मित्र और वरुण] के साथ जब अर्यमा भी उत्पन्न होता है।

मित्र, वरुण और अर्यमा इन तीनों की सामूहिक शक्ति को ही इन्द्र कहते हैं। यह शक्ति पाँच रूपों में इस संसार में कार्य करती हुई देखी जाती है। ये पाँच रूप हैं—

(1) परिमण्डलीय अन्तर्गत शक्ति (Inter-atomic energy)
(2) रासायनिक शक्ति (Chemical energy)
(3) आण्विक विकम्पन शक्ति (Molecular dynamic energy)
(4) चुम्बकीय शक्ति (Magnetism)
(5) भू-आकर्षण (Gravity)

सांख्य इनको तन्मात्र कहता है।

ये शक्तियाँ अचेतन हैं। ये इन्द्र के ही रूप हैं।

अश्विनौ

वेदों के मध्यकालीन भाष्यकार अश्विनौ से कोई दो देवता विशेष

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

मानते हैं। इनके विषय में यह क़ल्पना की जाती है कि ये दो इकट्ठे ही रहते हैं। दोनों भाई-भाई हैं।

हम ऐसा नहीं मानते। हम समझते हैं कि जो कोई भी शक्तिशाली देवता, प्राणी अथवा पदार्थ में इकट्ठे हो ऐसे कार्य करते हैं जैसे रथ में जुते हुए दो घोड़े, तो उसका नाम अश्विनौ हो जाता है।

वैदिक भाषा में अश्व उसको कहा है जो किसी कार्य को करे। उदाहरण के रूप में ऋग्वेद मंत्र 1-163-1 में परमात्मा के तेज को जो रचना कार्य करने के लिए उत्पन्न हुआ, अर्वः कहा है। अर्वः का अर्थ अश्व भी है।

वृहदारण्यक उपनिषद् में भी सृष्टि उत्पत्ति के समय पहले अश्व की उत्पत्ति का वर्णन है। वहाँ कहा है—

अहर्वा अश्वं पुरस्तान्महिमान्वजायत तस्य पूर्वे समुद्रे योनी रात्रिरेनं। पश्चान्महिमान्वजायत तस्यापरे समुद्रे योनिरेतौ वा अश्वं महिमानावभितः सम्बभूवतुः। हयो भूत्वा देवानवहद्वाजी गन्धर्वानर्वासुरानश्वो मनुष्यान् समुद्र एवास्य बन्धुः समुद्रो योनिः॥

—वृ०उ० 1-1-2

अर्थ है—अश्व के सामने दिन (ब्रह्म दिन) प्रकट हुआ। यह (अश्व के उद्‌गम स्थान अन्तरिक्ष) की पूर्व दिशा हुई।

उसके दूसरी ओर (पूर्व से) पश्चिम हो गया। उस दिशा में और अन्तरिक्ष में रात्रि है। ये दोनों (ब्रह्म दिन और ब्रह्म रात्रि) अश्व के आगे और पीछे रहते हैं।

यह देवताओं का हय है, गन्धर्व के अर्वा हैं और मनुष्यों का अश्व है। (अभिप्राय यह है कि अश्व, 'अर्वा' और 'हय' शब्द एक ही हैं। स्थान भेद से नाम भेद है।)

अतएव कार्य करने वाले को अश्व कहते हैं। जब कोई भी दो एक ही कार्य करें तो अश्विनौ कहे जाते हैं। ये रथ के घोड़े भी हो सकते हैं। गृहस्थ में पति-पत्नी भी हो सकते हैं, किसी उद्योग में मालिक-सेवक भी हो सकते हैं। वैज्ञानिक और कारीगर भी हो सकते हैं। अभिप्राय यह है कि कोई दो देवता जब एक ही कार्य को मिलकर करें, तब वे अश्विनौ कहे जाते हैं।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पण्डित ब्रह्म मुनि अश्विनौ में निम्न जोड़े मानते हैं—

(1) द्यौ और पृथिवी;

(2) दिन और रात,

(3) सूर्य और चन्द्र,

(4) पुरुष और प्रकृति,

(5) अपूर्व-पूर्व,

(6) शुक्ल पक्ष और कृष्ण पक्ष,

(7) उत्तरायण-दक्षिणायन,

(8) वीर्य-रजः,

(9) राजा-रानी,

इस प्रकार कोई भी दो शक्तियाँ जब एक ही कर्म को मिलकर करें तो वे अश्विनौ कही जा सकती हैं।

वेदमंत्रों में भी हम ऐसा ही देखते हैं। उदाहरण के रूप में निम्न मंत्रों में अश्विनौ के अर्थ द्रष्टव्य हैं—

त्रिश्चिन्नो अद्या भवतं नवेदसा विभुर्वां याम उत रातिरश्विना। युवोर्हि यन्त्रं हिम्येव वाससोऽभ्यायं सेन्या भवतं मनीषिभिः॥

—ऋ० 1-34-1

इस मंत्र का देवता है—'अश्विनौ।'

मंत्रार्थ—अश्विना नवदेसा अद्य वाम् यामः वि-भुः उत-रातिः—हे बुद्धिमान् अश्विनौ! आज तुमको रथ दूर चारों ओर ले जाएँ।

नः त्रिः चित् भवतम्। हम तीन बार अथवा तीन दिशाओं में होवें।

(हि युवोः यन्त्रम् हिम्या-इव वाससः अभि-आयसेन्या मनीषिभिःभवतम्) निश्चय से दोनों बुद्धिमानों द्वारा यंत्र को रात्रि की ठंडक से सूर्य किरणों में ले जाया जाए।

इसी सूत्र का अगला मंत्र है—

त्रयः पवयो मधुवाहने रथे सोमस्य वेनामनु विश्व इद्विदुः। त्रयः स्कम्भासः स्कभितास आरभे त्रिर्नक्तं याथस्त्रिवश्विना दिवा॥

—ऋ० 1-34-2

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

इस मंत्र का देवता भी 'अश्विनौ' है—

मंत्रार्थ—(त्रयः पवयः मधु-वाहने रथे) तीन चक्कों वाले सुखपूर्वक ले जाने वाले रथ में;

(सोमस्य वेनाम् अनु विश्वे इत् विदुः) इस चन्द्र के समान कमनीय को सम्पूर्ण में जाना जाता है। (अभिप्राय यह कि उस रथ के, जिसके तीन चक्के हैं जो तीन दिशाओं में चल सकता है, उसकी सुन्दर सुखकारक गति से तुम दोनों इसे ले जाओ।)

(अश्विना त्रयः स्कम्भासः त्रिः स्कभितासः आ-रभे नक्तम् याथः त्रिः ऊं दिवा) हे अश्विनौ! स्थापित किये तीन खम्भों वाले रथ में तीन बार रात में और तीन बार दिन में जाते हो।

इन दोनों मंत्रों में अश्विनौ किसी प्रकार के रथ को ले जाने और लाने वाले कहे हैं। रथ यंत्र है। अतएव यहाँ अभिप्राय यंत्र के स्वामी तथा यंत्र को चलाने वाले से हो सकता है। रथ ऐटम है। रथी सोम है तथा अश्व मित्र और वरुण हैं।

अब दो अन्य मंत्रों का उदाहरण देते हैं।

एषो उषा अपूर्व्या व्युच्छति प्रिया दिवः। स्तुषे वामश्विना बृहत्॥

—ऋ० 1-46-1

इस मंत्र का देवता है—'अश्विनौ'।

मन्त्रार्थ—एषो दिवः प्रिया अपूर्व्या उषाः वि उच्छति—सूर्य प्रकाश से यह प्रिया अद्वितीय उषा फैलती है।

अश्विना बृहत् वाम् स्तुषे)—हे अश्विनौ! तुम दोनों की मैं स्तुति करता हूँ।

इसी सूक्त का अगला मन्त्र है—

या दस्रा सिन्धुमातरा मनोतरा रयीणाम्। धिया देवा वसुविदा॥

—ऋ० 1-46-2

इस मन्त्र का भी देवता है—'अश्विनौ।'

मन्त्रार्थ—या दस्रा मनोतरा सिन्धु-मातरा रयीणाम्—जो दर्शनीय अतिशय मन को लुभाने वाले, अन्तरिक्ष के माता-पिता, धन-दौलत हैं;

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

धिया देवा वसु-विदा—बुद्धिमान् दिव्य गुण वाले सबको ज्ञात हों।

इस सूक्त में सूर्य और उषा को अश्विनौ कहा है।

एक अन्य मन्त्र में अश्विनौ का वर्णन इस प्रकार है—

अयं वां मधुमत्तमः सुतः सोम ऋतावृधा। तमश्विना पिबतं तिरो अह्न्यं धत्तं रत्नानि दाशुषे॥

—ऋ० 1-47-1

इस मन्त्र का देवता है—'अश्विनौ'

मन्त्रार्थ—अयम् सुतः मधुमत्-तमः सोमः वाम् कृत-वृधा—यह उत्पन्न हुआ, [परिश्रम से बना] सुखकारक, कल्याणकारी तुम्हारे ऋतों को बढ़ाने वाला;

तम् अश्विना तिर—अह्नयम् पिबतम्—उसको, हे अश्विनौ! दिन व्यतीत होने पर पियो (उसका भोग करो);

धत्तम् रत्नानि दाशुषे—धन-दौलत धारण करने वाले दानवीरों को दो।

मन्त्र का अभिप्राय यह है कि पति-पत्नी (गृहस्थ) अपना पैदा किया हुआ (धन) जो सुख तथा कल्याण देने वाला हो, उनको आगे दान में दें।

'सुतः'—पैदा किया हुआ अर्थात् परिश्रम से प्राप्त धन-दौलत।

इसी सूक्त का दूसरा मन्त्र है—

त्रिबन्धुरेण त्रिवृता सुपेशसा रथेनायातमश्विना। कण्वासो वां ब्रह्म कृण्वन्त्यध्वरे तेषां सुशृणुतं हवम्॥

—ऋ० 1-47-2

इस मन्त्र का भी देवता है—'अश्विनौ'।

मन्त्रार्थ—अश्विन त्रि-बन्धुरेण त्रि-वृता सु-पेशसा रथेन आ यातम्—हे अश्विनौ! तीन बन्धनों से युक्त और तीन प्रकार के कार्य करते हुए सुन्दर शरीर से आवो;

वाम् कण्वासः ब्रह्म कृण्वन्ति तेषाम् अध्वरे सु शृणुतम् हवम्—तुमको बुद्धिमान् वेद का ज्ञान देते हैं। यज्ञ में उनका कथन सुनो।

यहाँ भी अश्विनौ से अभिप्राय (यजमान) पति-पत्नी है।

इसी सूक्त का अगला मन्त्र है—

अश्विना मधुमत्तमं पातं सोममृतावृधा। अथाद्य दस्रा वसु

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

बिभ्रता रथे दाश्वांसमुपगच्छतम्॥

—ऋ० 1-47-3

इस मन्त्र का देवता भी है—'अश्विनौ'।

मन्त्रार्थ—ऋत-वृधा अश्विनौ सोमम् मधुमत्-तमम् पातम्—हे ऋतों को बढ़ाने वाले अश्विनौ! कल्याणकारी और सुखकारक पालन करो।

अथ अद्य दस्त्रा वसु बिभ्रता रथे दाश्वांसम् उप गच्छतम्—और अपने दु:खों को हटाने वाले धन को शरीर में धारण करो और जो दूसरों को देने वाले हैं, उनको समीप जाकर दो।

इस मन्त्र में भी अश्विनौ का अभिप्राय पति-पत्नी है।

इस प्रकार हमने इन कुछ एक वेदमन्त्रों के उदाहरणों से यह बताया है कि 'अश्विनौ' कोई विशेष देवता नहीं है। जब दो शक्तियाँ, देवता अथवा व्यक्ति मिलकर एक ही कार्य करते हैं, तब वे इस प्रकार कार्य करते हैं जैसे एक रथ में दो अश्व जुते हों।

यजुर्वेद में स्थान-स्थान पर कहा है—'**अश्विनौ बाहुभ्याम्, हस्ताभ्याम्।**' वहाँ भी अभिप्राय यही है—दो शक्तिशाली बाहों और हाथों वाला। ऐसा सूर्य के लिए कहा है।

❑❑❑

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

ऐतिहासिक पृष्ठभूमि पर

श्री गुरुदत्त

की

एक अन्य रचना

खंडहर बोल रहे हैं

तीन भागों में

मूल्य : 180 रुपए

कुछ इतिहास-लेखक मुगल सम्राट शाहजहाँ की न्यायप्रियता के लंबे-चौड़े गीत गाते हैं परंतु जो कुछ उसके काल में शाही महलों में निर्माण हुआ तथा देश में घटा, वह न्याय तथा शांति का परिणाम नहीं कहा जा सकता। यह शाहजहाँ ही था जिसने अपनी प्रिय बेगम के पेट से उत्पन्न हुआ औरंगजेब। शाहजहाँ के काल में ही आगरा के किले में बंदी शाहंशाह की सैकड़ों अविवाहित बेगमें थीं।

यह एक ऐतिहासिक तथ्य है कि ह्रास का बीजारोपण होता है राज्य के विलासकाल में जिसका स्वाभाविक परिणाम है विनाश और यही औरंगजेब के काल के बाद हुआ। अतः यह उपन्यास है मुगल सम्राट औरंगजेब द्वारा बनाए खंडहरों की मुँह बोलती कहानी।

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 डी.बी. गुप्ता मार्ग

(समीप प्रह्लाद मार्केट) करोल बाग, नई दिल्ली-5

फोन : 23553624 ◆ फैक्स : 91-11-25412417

E-mail : indiabooks@rediffmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध साहित्यकार एवं चिंतक
श्री गुरुदत्त की एक अन्यतम रचना

परित्राणाय साधूनाम्

महाभारत की कथा को आधार बनाकर लिखे गए
श्री गुरुदत्त के तीन उपन्यास
अवतरण, सम्भवामि युगे-युगे तथा विनाशाय च दुष्कृताम्

अब एक जिल्द में अनुपम साज-सज्जा के साथ पुनः प्रकाशित। महाभारत का युद्ध अब तक के हुए युद्धों से भी अधिक भीषण था, जिसमें कहा जाता है कि 18 दिन में लगभग पचास लाख योद्धा मारे गए थे। फिर भी यह एक धर्मयुद्ध था। क्यों और कैसे?

महाभारत की कथा को आधार बनाकर लिखा गया कदाचित् यह सर्वप्रथम उपन्यास है जो सन् 1960 में प्रथम बार छपा था।

महाभारत की कथा को प्रस्तुत किया गया है संजय के मुख से। संजय प्रत्यक्षदर्शी था न केवल महाभारत युद्ध का प्रत्युत कौरवों-पांडवों के जीवनपर्यन्त चलनेवाले वैमनस्य तथा संघर्ष का।

एक अनुपम कथानक, हिंदी के मूर्धन्य कथाकार गुरुदत्त द्वारा अन्यतम ढंग से प्रस्तुत।

तीनों उपन्यास एक ही जिल्द में
पृष्ठ संख्या 868 (डिमाई आकार)
संपूर्ण कपड़े की सुदृढ़ जिल्द—
मूल्य 395/- रुपए
यह रचना साहित्यकार गुरुदत्त—प्रतिनिधि रचनाएँ
खंड पाँच के रूप में भी प्रकाशित हुई है।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

भारतीय संस्कृति के उपासकों को एक अनुपम उपहार

हमारी सांस्कृतिक धरोहर

साहित्यकार श्री गुरुदत्त के भारतीय संस्कृति के विभिन्न पहलुओं पर प्रकाश डालने वाले निबंधों का एक ही खंड में संग्रह।

वेद, पुराण, उपनिषद्, दर्शन शास्त्र, श्रीमद्भगवद्गीता, इतिहास, पुराण, मनुष्य, समाज, धर्म, इत्यादि विषयों पर विश्लेषणात्मक तथा प्रमाणसहित एवं युक्तियुक्त विवेचना अत्यंत ही सरल भाषा में।

पाश्चात्य विद्वानों (?) तथा उनका अनुकरण करने वाले भारतीय लेखकों ने जो अपनी मिथ्या धारणाओं से समाज को भ्रमिक तथा भ्रष्ट कर रहे हैं, उनका खंडन करने के साथ-साथ भारतीय संस्कृति का वास्तविक तथा उज्ज्वल रूप प्रस्तुत करने का यह एक अनुपम प्रयास है।

यह रचना पाठकों के लिए, समाज के लिए तथा भारतीय संस्कृति के उपासकों के लिए प्रेरणाप्रद सिद्ध होगी।

डिमाई आकार में, बढ़िया कागज, सुंदर छपाई।

मूल्य 150 रुपए।

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 डी.बी. गुप्ता मार्ग
(समीप प्रह्लाद मार्केट) करोल बाग, नई दिल्ली-5
फोन : 23553624 ◆ फैक्स : 91-11-25412417
E-mail : indiabooks@rediffmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

सुप्रसिद्ध विद्वान् एवं विचारक

श्री गुरुदत्त

की

गीता की विवेचना में से अनुपम रचना

श्रीमद्भगवद्गीता

Central Library
167968
Gurukul Kangri (Deemed to be University), Haridwar

सरल सुबोध भाषा भाष्य — मूल्य : 120.00

एक अध्ययन — मूल्य : 120.00

जिस जाति की धरोहर में गीता का ज्ञान मिला हो, उस जाति के घटक आज मरने से भयभीत हों तो यह आश्चर्य की बात है। इसका मुख्य कारण यह है कि हम गीता को ऐसा ज्ञान मानते हैं जिसकी आवश्यकता वृद्धावस्था में मृत्यु के किनारे बैठे हुए पड़ती है।

वास्तव में गीता-ज्ञान मनुष्य को कर्म-क्षेत्र में उतरने के समय मिलना चाहिए। गीता मुख्यतया कर्मयोग का ज्ञान है।

भगवद्गीता के ज्ञान की शुद्ध विवेचना में लिखी ये रचनाएँ अनुपम हैं।

हिन्दी साहित्य सदन

2 बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 डी.बी. गुप्ता मार्ग

(समीप प्रह्लाद मार्केट) करोल बाग, नई दिल्ली-5

फोन : 23553624 ◆ फैक्स : 91-11-25412417

E-mail : indiabooks@rediffmail.com

081
167968

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

पुस्तकालय

गुरुकुल काँगड़ी विश्वविद्यालय, हरिद्वार

R 089.9143

वर्ग संख्या........GUR-Y आगत संख्या.167968

पुस्तक विवरण की तिथि नीचे अंकित है। इस तिथि सहित 30 वें दिन यह पुस्तक पुस्तकालय में वापस आ जानी चाहिए। अन्यथा 50 पैसे प्रतिदिन के हिसाब से विलम्ब दण्ड लगेगा।

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

GURUKUL KANGRI LIBRARY

	Signature	Date
Access No.		
Class No.		
Cat No.		
Tag etc.		
E.A.R.		
Recomm. by.		
Data Ent. by		
Checked		

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar

Digitized by Arya Samaj Foundation Chennai and eGangotri

श्री गुरुदत्त
1894-1989
शिक्षा : एम.एससी.

प्रथम उपन्यास "स्वाधीनता के पथ पर" से ही ख्याति की सीढ़ियों पर जो चढ़ने लगे कि फिर रुके नहीं।

विज्ञान की पृष्ठभूमि पर वेद, उपनिषद् दर्शन इत्यादि शास्त्रों का अध्ययन आरम्भ किया तो उनको ज्ञान का अथाह सागर देख उसी में रम गये।

वेद, उपनिषद् तथा दर्शन शास्त्रों की विवेचना एवं अध्ययन अत्यन्त सरल भाषा में प्रस्तुत करना गुरुदत्त की ही विशेषता है।

उपन्यासों में भी शास्त्रों का निचोड़ तो मिलता ही है, रोचकता के विषय में इतना कहना ही पर्याप्त है कि उनका कोई भी उपन्यास आरम्भ करने पर समाप्त किये बिना छोड़ा नहीं जा सकता।

ISBN : 81-88388-26

08
G
1

हिन्दी साहित्य सदन

2, बी.डी. चैम्बर्स, 10/54 डी.बी. गुप्ता रोड, करोल बाग
नई दिल्ली-5 (समीप पुलिस स्टेशन), चर्च के सामने
फोन : 3553624 PP- 3617134 फैक्स : 5412417
e-mail : indiabooks@rediffmail.com

CC-0. In Public Domain. Gurukul Kangri Collection, Haridwar